कला कुञ्ज

कक्षा 10

कला कुञ्ज

कक्षा—10

कला कुञ्ज

कक्षा–10

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

कला कुञ्ज

पाठ्य पुस्तक लेखन समिति

डॉ. विजयेन्द्र गौतम–प्रवक्ता संगीत
(संयोजक)
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

लेखक

डॉ. नम्रता स्वर्णकार–चित्रकला
विभागाध्यक्ष, ललित कला विभाग,
जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ. अमित राजवंशी–प्रवक्ता,
राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर

श्री प्रहलाद शर्मा–चित्रकला
राजकीय उच्च अध्ययन शि. संस्थान, अजमेर

डॉ. राम मनोहर शर्मा–संगीत
व्याख्याता,
राजस्थान संगीत संस्थान, जयपुर

कला कुञ्ज

पाठ्यक्रम समिति

डॉ. अमित राजवंशी– (संयोजक)
प्रवक्ता,
राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर–305001

श्री सुनील कुमार
व्याख्याता,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, बून्दी–323001

श्रीमती अमिता अग्रवाल
व्याख्याता,
राजकीय उच्च माध्यमिक अंध विद्यालय, आदर्शनगर,
अजमेर–305001

डॉ. अश्विन एम. दलवी
सचिव,
नादसाधना इंस्टीट्यूट फॉर इंडियन म्यूजिक एण्ड रिसर्च सेन्टर,
जयपुर–302001

प्रस्तावना

मानव जीवन में कलाओं का प्रश्वास का अंतरंग संबंध है। विविध कलाऐं किसी समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। शैक्षिक व्यवस्था में जब कलाओं के पृष्ठ पढ़ाए जाते है तो ये कलाऐं लिखित व प्रकाशित सामग्री के रुप में एक नव पल्लवित पीढ़ी की सृजनता, कल्पनाशीलता, बौद्धिकता तथा परम्परा से जुड़ाव में विद्यार्थियों को स्पंदित करती हैं। अतः प्रकाशक व लेखक का दायित्व हो जाता है कि संबंधित साहित्य में कलात्मक सृजनता को तथ्यात्मक व प्रभावी रुप में नई पीढ़ी के समक्ष रखें जब यह प्रक्रिया माध्यमिक स्तर तक के विद्यार्थियों हेतु निर्धारित हो तो इसकी अभिव्यक्ति एवं संप्रेषण में भाषा की सरलता व विद्यार्थियों हेतु आकर्षक प्रिंट डिजाइन अत्यंत हो जाता है।

मनुष्य की नकारात्मक प्रवृतियों के शमन व शोध हेतु जीवन में कलाओं की नितांत आवश्यकता है। माध्यमिक शिक्षा के नीति निर्माताओं का मत है कि विद्यार्थी के स्तर पर कलाओं के एक समेकित स्वरुप को आकर्षक ढंग से विद्यार्थी के समक्ष रखने से बोधगम्यता सरस, सरल व प्रभावी हो सकती है, साथ ही शास्त्रीय पक्ष परम्परा से जुड़ा हो एवं भाषा सरल व चित्रों के माध्यम से स्पष्ट की जाए एवं समग्र सिद्वान्त के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान की कलात्मक अभिव्यंजनाओं को भी समाहित किया जाए।

इस हेतु राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए ''कला शिक्षा'' विषय के अन्तर्गत विशुद्ध भारतीय कलाओं– चित्रकला, संगीत, नृत्य व नाटक की शास्त्रीय व लोक शैलियों का सामान्य परिचय अनूठी भावाभिव्यंजना तथा रेखीय व चित्रात्मक अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

विभिन्न अध्यायों में चित्रकला के तत्व माध्यम, तकनीक व राजस्थान की लोक चित्रकलाओं, संगीत के तत्व, वाद्य व वाद्य भेद, राजस्थानी लोक संगीत के गायन, वादन, नृत्य पक्ष तथा नाटक, रंगमंच एवं अभिनय के भेद व लोक नाट्य आदि विषयों को समाहित किया गया है।

पुस्तक को प्रभावी, ज्ञानवर्धक व रोचक बनाने हेतु इंटरनेट व गूगल सर्च इंजन का चित्रों के सहयोग हेतु हार्दिक आभार व्यक्त करना अत्यंत आवश्यक है।

पुस्तक लेखन में राष्ट्रीय नव निर्माण हेतु विद्यार्थी के साहित्यिक जागरण अभियान को प्रारंभ किया गया है, प्रत्येक विषय पर अत्यंत संक्षेप में 'गागर में सागर' भरने का यत्न है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर का यह साधु प्रयास अन्य राज्यों के बोर्ड/मंडलों के लिए भी निश्चित ही अनुकरणीय हो पाएगा।

आशा एवं विश्वास के साथ।

संयोजक

अनुक्रमणिका

1.	संयोजन के सिद्धान्त एवं अंकन, अर्नुअंकन	1–13
2.	राजस्थान की चित्रकला	14–23
3.	राजस्थान के समकालीन चित्रकार	24–33
4.	विभिन्न कला शैलियों का वर्गीकरण	34–44
5.	सांगीतिक परिभाषाएँ	45–59
6.	भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों का परिचय	60–67
7.	रंगमंच : एक परिचय	68–78

कला शिक्षा

विषय कोड–83

इस विषय के पाठ्यक्रम को दो भागों में विभक्त किया गया है–
(क) चित्रकला (ख) संगीत एवं नाट्य

समय : 3.15 घण्टे पूर्णांक 100

क्र.सं.		अधिगम क्षेत्र	अंकभार
1	(क)	चित्रकला	50
	(i)	सैद्धान्तिक पक्ष	15
	(ii)	प्रायोगिक पक्ष	25
	(iii)	प्रस्तुति कार्य	10
2	(ख)	संगीत एवं नाट्य	50
	(i)	सैद्धान्तिक पक्ष	20
	(ii)	प्रायोगिक पक्ष	20
	(iii)	प्रस्तुति कार्य	10

खण्ड–क : चित्रकला (माह में दो कालांश) 50

1. सैद्धान्तिक पक्ष 15
   - (अ) संयोजन के सिद्धांत : सहयोग, सामंजस्य, संतुलन, प्रभाविता, प्रवाह प्रमाण का सामान्य ज्ञान एवं अंकन, अर्नुअंकन। 05
   - (ब) विभिन्न कला शैलियों का वर्गीकरण : जनजातीय कला, लोक कला, बाल कला, शास्त्रीय कला, आधुनिक कला 05
   - (स) राजस्थान की चित्रकला : राजस्थान की परम्परागत चित्रकला एवं आधुनिक समकालीन चित्रकला का अध्ययन। 05

2. प्रायोगिक पक्ष 25
   - (अ) आलंकारिक संयोजन : प्राकृतिक फूल पत्तों, पशु पक्षियों, मानवाकृतियों अथवा विभिनन ज्यामितीय आकारों का अलंकारिक संयोजन 1/4 इम्पीरियल शीट पर जलरंग अथवा टेम्परा द्वारा पूर्ण करें। 10
   - (ब) राजस्थानी शैली के चित्रों की अनुकृति 1/4 शीट पर जलरंग अथवा टेम्परा द्वारा पूर्ण करें। 10
   - (स) पेंसिल स्केच– प्राकृतिक एवं मानव निर्मित वस्तुओं व मानवाकृतियों का सरल रेखांकन। 05

3. प्रस्तुति कार्य (सबमिशन वर्क) 10

(i) प्रायोगिक पक्ष (अ) के सत्र दौरान बनाये गये 4 कार्य। 03

(ii) प्रायोगिक पक्ष (ब) के सत्र दौरान बनाये गये 4 कार्य। 03

(iii) प्रायोगिक पक्ष (स) के सत्र दौरान बनाये गये 4 कार्य। 04

नोट– (i) सत्रीय प्रस्तुति कार्य 1/4 इम्पीरियल शीट पर बनाकर संकलित कर फाइल के रूप में प्रस्तुत किये जायें।

(ii) प्रायोगिक पक्ष से सम्बन्धित चित्र सामग्री का प्रकाशन पुस्तक में किया जाएगा।

खण्ड– ख : संगीत एवं नाट्य (माह में दो कालांश) 50

1. सैद्धान्तिक पक्ष 20

(अ) सांगीतिक परिभाषाएं – अलंकार, राग, थाट, लय, ताल। 05

(ब) गायन शैलियों का परिचय– सरगम गीत, तराना, ख्याल, भजन, गजल, कव्वाली 05

(स) भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों का परिचय– कत्थक, भरतनाटयम्, कथकली, मणिपुरी। 05

(द) रंगमंच एक परिचय– अभिव्यक्ति, संवाद, मनोरंजन 05

2. प्रायोगिक पक्ष 20

(अ) राग यमन और राग भूपाली के आरोह, अवरोह, सरगम गीत व अलंकार अभ्यास, पाठ्यक्रम की गायन शैलियों का व्यावहारिक ज्ञान। 05

(ब) रस एवं भाव के अनुसार मुखमुद्रा प्रदर्शन व राजस्थान के किसी लोक नृत्य का प्रदर्शन 05

(स) ताल कहरवा, दादरा व त्रिताल के ठेके पर हाथ से ताली लगाना। 05

(द) कक्षा–10 से सम्बन्धित किसी भी विषय की कहानी अथवा कविता का नाट्य मंचन। 05

3. प्रस्तुति कार्य (सबमिशन वर्क) 10

(अ) 10 नए अलंकार बनाकर लिखना। 02

(ब) नवरस आधारित मुखमुद्राओं व शास्त्रीय नृत्यों के चित्रों का संग्रह। 03

(स) भजन, गजल, कव्वाली के एक–एक प्रसिद्ध कलाकार का जीवन परिचय। 03

(द) मंच व्यवस्था एवं रूप सज्जा से सम्बन्धित विभिन्न चित्रों का संग्रह। 02

मूल्यांकन –

(1) विषय की सत्र पर्यन्त सम्पादित क्रियाकलापों की वार्षिक योजना बनायी जावे। क्रियाकलापों के एवं सामयिक परीक्षाओं के आधार पर सतत् आन्तरिक मूल्यांकन किया जावेगा। मूल्यांकन के लिए समय–समय पर विद्यार्थी द्वारा विद्यालय व समुदाय में होने वाले उत्सवों कार्यक्रमों तथा अन्य पर्वों आदि पर तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यार्थियों

द्वारा चित्रांकन, सजावट, नृत्य–नाटक व संगीत में दिये गये यथेष्ट व्यक्तिगत व सामूहिक योगदान का विवरण अध्यापक द्वारा रखा जाए। सैद्धान्तिक पक्ष के मूल्यांकन हेतु समय–समय पर सामयिक परीक्षा का आयोजन विभागीय निर्देशानुसार किया जाए।

(2) सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक अंकों के योग के आधार पर प्रगति पत्र में निम्न प्रकार ग्रेडिंग अंकित करें।

अंकों का प्रतिशत	0–20	21–40	41–60	61–80	81–100
ग्रेड	E	D	C	B	A
विवरण	सामान्य से कम	सामान्य	अच्छा	बहुत अच्छा	उत्कृष्ट

(3) सम्पूर्ण मूल्यांकन माह जनवरी तक पूर्ण कर निर्देशानुसार ग्रेडिंग माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर को प्रेषित करें।

(4) प्रवृत्तियों/क्रियाकलापों के आयोजन/क्रियान्विति हेतु बोर्ड द्वारा जारी कला शिक्षा संदर्शिका का अवलोकन करें।

(5) छात्रों के मूल्यांकन कार्य का रिकॉर्ड रखा जावे। बोर्ड द्वारा नियुक्त अधिकारी उसकी जाँच कर सकता है।

प्रस्तावना

मानव जीवन में कलाओं का श्वांस–प्रश्वास का अंतरंग संबंध है। विविध कलाऐं किसी समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। शैक्षिक व्यवस्था में जब कलाओं के पृष्ठ पढ़ाए जाते है तो ये कलाऐं लिखित व प्रकाशित सामग्री के रुप में एक नव पल्लवित पीढ़ी की सृजनता, कल्पनाशीलता, बौद्धिकता तथा परम्परा से जुड़ाव में विद्यार्थियों को स्पंदित करती हैं। अतः प्रकाशक व लेखक का दायित्व हो जाता है कि संबंधित साहित्य में कलात्मक सृजनता को तथ्यात्मक व प्रभावी रुप में नई पीढ़ी के समक्ष रखें जब यह प्रक्रिया माध्यमिक स्तर तक के विद्यार्थियों हेतु निर्धारित हो तो इसकी अभिव्यक्ति एवं संप्रेषण में भाषा की सरलता व विद्यार्थियों हेतु आकर्षक प्रिंट डिजाइन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

मनुष्य की नकारात्मक प्रवृतियों के शमन व शोध हेतु जीवन में कलाओं की नितांत आवश्यकता है। माध्यमिक शिक्षा के नीति निर्माताओं का मत है कि विद्यार्थी के स्तर पर कलाओं के एक समेकित स्वरुप को आकर्षक ढंग से विद्यार्थी के समक्ष रखने से बोधगम्यता सरस, सरल व प्रभावी हो सकती है, साथ ही शास्त्रीय पक्ष परम्परा से जुड़ा हो एवं भाषा सरल व चित्रों के माध्यम से स्पष्ट की जाए एवं समग्र सिद्वान्त के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान की कलात्मक अभिव्यंजनाओं को भी समाहित किया जाए।

इस हेतु राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा नवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए ''कला शिक्षा'' विषय के अन्तर्गत विशुद्ध भारतीय कलाओं– चित्रकला, संगीत, नृत्य व नाटक की शास्त्रीय व लोक शैलियों का सामान्य परिचय अनूठी भावाभिव्यंजना तथा रेखीय व चित्रात्मक अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

विभिन्न अध्यायों में चित्रकला के तत्व माध्यम, तकनीक व राजस्थान की लोक चित्रकलाओं, संगीत के तत्व, वाद्य व वाद्य भेद, राजस्थानी लोक संगीत के गायन, वादन, नृत्य पक्ष तथा नाटक, रंगमंच एवं अभिनय के भेद व लोक नाट्य आदि विषयों को समाहित किया गया है।

पुस्तक को प्रभावी, ज्ञानवर्धक व रोचक बनाने हेतु इंटरनेट व गूगल सर्च इंजन का चित्रों के सहयोग हेतु हार्दिक आभार व्यक्त करना अत्यंत आवश्यक है।

पुस्तक लेखन में राष्ट्रीय नव निर्माण हेतु विद्यार्थी के साहित्यिक जागरण अभियान को प्रारंभ किया गया है, प्रत्येक विषय पर अत्यंत संक्षेप में 'गागर में सागर' भरने का यत्न है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर का यह साधु प्रयास अन्य राज्यों के बोर्ड/मंडलों के लिए भी निश्चित ही अनुकरणीय हो पाएगा।

आशा एवं विश्वास के साथ।

संयोजक

अनुक्रमणिका

1.	संयोजन के सिद्धान्त	1–13
2.	राजस्थान की चित्रकला	14–23
3.	राजस्थान के समकालीन चित्रकार	24–33
4.	विभिन्न कला शैलियों का वर्गीकरण	34–44
5.	सांगीतिक परिभाषाऐं	45–59
6.	भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों का परिचय	60–67
7.	रंगमंच : एक परिचय	68–78

संयोजन के सिद्धान्त

संयोजन (Composition) किन्हीं भी दो या दो से अधिक तत्वों की मधुर योजना को कहते हैं। कला की दृष्टि से संयोजन कलात्मक विचारों को व्यवस्थित रूप से प्रदर्शित करने को कहते हैं। संयोजन को सरल शब्दों में संजोना भी कह सकते है। यह संजोना हम जिस माध्यम में कार्य करते है उस से सम्बन्धित तत्वों की मधुर योजना हो सकती है। जब हम चित्रकला की बात करते है। तो इसमें चित्रकला के उन छः तत्वों को संजोते हैं जिनके बारे में हमने कला कुंज के प्रथम भाग में अध्ययन किया था। वह छः तत्व हैं :–

1. रेखा 2. रूप 3. वर्ण 4. तान 5. पोत. 6. अन्तराल

चित्र संयोजन में हम रेखा, रूप, वर्ण आदि को इस प्रकार नियोजित करतें हैं कि चित्र संतुलित एवं आकर्षक दिखाई दे। उदाहरणार्थ जब हम अपने नये घर में कमरे को विभिन्न सामान से सजाते हैं तो उसमें हम इस प्रकार से कुर्सी, मेज, पलंग आदि को विभिन्न स्थानों पर रखते हैं कि कमरा संतुलित एवं आकर्षक नज़र आये। कमरे की दीवारों का रंग, पर्दे का रंग सोफे का कुशन इत्यादि एक दूसरे से मेल खाते हुए हो इस बात का भी ध्यान रखा जाता है। (चित्र संख्या–1 व 2) कुछ इसी प्रकार का नियोजन हम अपने चित्र में विषय सम्बन्धित विभिन्न आकारों एवं वर्णों का प्रयोग करके करते है। हर चित्र को बनाते समय हर कलाकार के सोचने और बनाने में भिन्नता होती है किन्तु कुछ नियम सब पर लागू होते हैं जिनसे चित्र को आकर्षक बनाया जा सकता है। (चित्र संख्या–3, 4 व 5) इन नियमों को हम संयोजन के सिद्धान्त के रूप में जानते है। इन सिद्धान्तों के प्रयोग से चित्र संतुलित एवं आकर्षक प्रतीत होता है। संयोजन के नियम मनमाने ढंग से नहीं बनाये गये हैं बल्कि हमें प्रकृति में यही नियम देखने को मिलते हैं। एक अच्छे चित्र में विविधता में एकता होती है।

चित्र सं. – 1

चित्र सं. – 2

चित्र सं. – 3

चित्र सं. – 4

चित्र सं. – 5

नम्नलिखित छः सिद्धान्तों का पालन करने पर चित्र आकर्षक एवं संतुलित बन पड़ता है। यही संयोजन के सिद्धान्त कहलाते हैं।

1. सहयोग (Unity)
2. सामंजस्य (Harmony)
3. संतुलन (Balance)
4. प्रभाविता (Dominance ro Emphasis)
5. प्रवाह (ताल, लय) (Rhythm)
6. प्रमाण (अनुपात) (Proportion)

1. सहयोग (Unity)

सहयोग का अर्थ चित्र के विभिन्न तत्वों में एकता, समानता एवं एक सम्बन्ध जो समस्त संयोजन को एक सूत्र में पिरोता है। इस से चित्र में विभिन्न आकृतियों, वर्ण आदि में बिखराव नहीं होता है। चित्र में बनी विभिन्न आकृतियाँ एवं वर्ण आदि इस प्रकार संयोजित होने चाहिये कि चित्र एक प्रतीत हो यानि चित्र को टुकड़ों में टूटने से बचाना और एक चित्र में कई चित्र का भाव पैदा न हो, एकता का उद्देश्य होता है। कई चित्रों का समूह एक अच्छा संयोजन नहीं प्रतीत होता।(चित्र संख्या–6) चित्र को देखने से ऐसा नहीं दिखना चाहिये कि चित्र की विभिन्न आकृतियाँ एवं अन्य तत्व सब एक दूसरे से अलग–अलग हों। यह वैसा ही है जैसा कि कपड़ों में हम कमीज के साथ पेंट खरीदते है ना कि धोती। चित्र में सहयोग के लिये विभिन्न आकृतियों एवं वर्ण आदि में समानता से कई बार एकरसता आ जाती है। चित्र में आकर्षण पैदा करने के लिये उसमें थोड़ा विरोधाभास (contrast) भी पैदा करना चाहिये। इसके लिये समान आकार की आकृतियों के साथ कुछ आकृतियाँ भिन्न प्रकार की चित्रित कर सकते है। और इसी प्रकार का प्रयोग वर्ण, तान, पोत इत्यादि में भी कर सकते है। किन्तु इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि यह विरोधाभास चित्र के विषय को प्रभावित न कर दे। विरोधाभास मात्र आकर्षण के लिये कम मात्रा में करना चाहिये।

चित्र सं. – 6

2. सामंजस्य (Harmony)

किसी भी चित्र में कई आकृतियाँ बनाई जाती हैं। जब इन आकृतियों में एक या अधिक प्रकार की समानता होती है वहाँ इनका संयोजन सामंजस्य उत्पन्न करता है। सामंजस्य का अर्थ है कि चित्र के सभी तत्व रूप, वर्ण, तान, पोत आदि एक दूसरे से मेल खाते हुए हों। सभी तत्व यथा रेखा, रूप, वर्ण आदि चित्र के विषय से जुड़े हुए हो यह ध्यान रखना चाहिये। गाँव के दृश्य में शहरी वातावरण चित्र में सामंजस्य को भंग करता है। (चित्र संख्या–7 व 8) सामंजस्य विरोधाभास का विलोम है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि चित्र में विरोधाभास का प्रयोग बिलकुल न किया जाये। सामंजस्य चित्र में सौंदर्य का भाव जाग्रत करता है। चित्र में कुछ मुख्य आकृतियाँ होती है एवं कुछ सहायक आकृतियाँ। मुख्य आकृतियों में सामंजस्य होना आवश्यक है। आकर्षण के लिये विरोधाभास सहायक आकृतियों में करना चाहिये। इसी प्रकार रेखा, वर्ण एवं पोत में भी सामंजस्य चित्र में सुन्दरता लाता है। वर्ण सामंजस्य के लिये समीपस्थ वर्ण योजना का प्रयोग कर सकते हैं। ठण्डे वर्ण के साथ ठण्डे वर्णों का प्रयोग चित्र में सामंजस्य भाव लाता है। (चित्र संख्या–9) इसी प्रकार गर्म वर्णों के साथ गर्म वर्ण योजना का प्रयोग करना चाहिये।(चित्र संख्या–10) उदासीन वर्णों (धूमिल, रूपहला) के

चित्र सं. – 7

चित्र सं. – 8

चित्र संख्या–9 ठण्डे वर्ण सामंजस्य

चित्र संख्या–10 गर्म वर्ण सामंजस्य

प्रयोग से भी वर्ण सामंजस्य आता है (चित्र संख्या–11)। पारदर्शक वर्ण का आवरण सभी वर्णों के ऊपर करने से सभी वर्णों में सामंजस्य भाव जाग्रत होता है। खुरदर पोत के साथ खुरदरे पोत का संतुलन सामंजस्य लाता है। (चित्र संख्या–12) गहरी तान एवं हल्की तान के बीच मध्यम तान का प्रयोग चित्र में तान सामंजस्य लाता है।(चित्र संख्या–13) किसी अच्छे चित्र में प्रायः सामंजस्य रहता है किन्तु यह अनिवार्य नहीं है। बाल–कला एवं आदिम कला में इसका विचार नहीं किया जाता है। आधुनिक कला में भी सामंजस्य की अपेक्षा विसम्वाद को अधिक महत्व दिया जाता है। चित्र में सामंजस्य जितना आधिक होगा, तनाव उतना ही शिथिल हो जायेगा और शान्ति का अनुभव होगा।

चित्र संख्या–11
उदासीन वर्ण योजना सामंजस्य

चित्र संख्या–12
पोत सामंजस्य

चित्र संख्या–13
तान सामंजस्य

3. संतुलन (Balance)

संतुलन के अनुसार चित्रण के सभी तत्व इस प्रकार व्यवस्थित हों कि उनका भार समस्त चित्र तल पर समुचित रूप से वितरित रहे। यहाँ भार से मतलब आकर्षण में दर्शक की दृष्टि को पकड़ने की क्षमता से है। यह आकर्षण चित्रण के विभिन्न तत्वों के प्रयोग पर निर्भर होता है। इस भार को अन्य भार से संतुलित किया जा सकता है। इसे समझने के लिये हम तराजू का उदाहरण ले सकते है। तराजू के दोनों पलड़े असमान भार से ऊपर नीचे होते हैं। उन्हें बराबर लाने हेतु दोनों पलड़ों में समान भार रखना पड़ता है। (चित्र संख्या–14 व 15) यही सिद्धान्त हमें चित्र में भी प्रयोग लाना होता है। असमान भार चित्र के केन्द्र से असमान दूरी पर संयोजित होते हैं। चित्र में बड़े आकार वाली आकृति का भार अधिक होता है। बड़े आकार को केन्द्र के समीप संयोजित किया जाता है। और छोटे आकार को केन्द्र से दूर संयोजित किया जाता है। गर्म वर्ण का भार अधिक होता है व ठण्डे वर्ण का भार कम होता है। आकार में पोत का प्रयोग उसके भार को बड़ा देता है। वर्ण के बड़े क्षेत्र का प्रभाव शांत होना चाहिये जबकि छोटे क्षेत्रों में शक्तिशाली विरोधाभास रहना चाहिये। इसके

चित्र संख्या–14

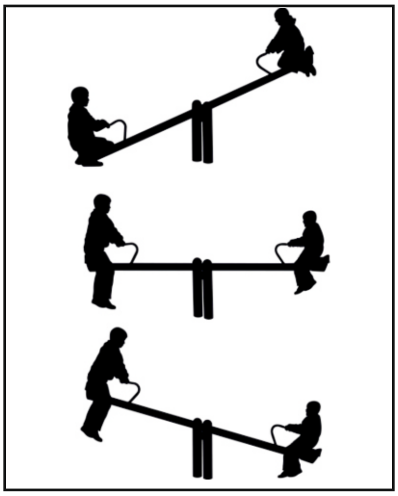

चित्र संख्या–15

लिये बड़े क्षेत्र में ठण्डे वर्ण का प्रयोग करना चाहिये एवं छोटे क्षेत्र में उष्ण वर्ण का प्रयोग संतुलन लाता है।

4. प्रभाविता (Dominance or Emphasis)

चित्र संख्या–16

प्रभाविता का अर्थ है कि हमारी दृष्टि चित्र के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व पर सबसे पहले पड़े उसके बाद महत्व के क्रमानुसार अन्य तत्वों पर जाये। चित्र में दर्शक की दृष्टि को पकड़ने की शक्ति होनी चाहिये। चित्र में एक आकर्षण केन्द्र होना चाहिये। जो भी तत्व दर्शक की दृष्टि को इस केन्द्र की ओर ले जाये वो संयोजन की दृष्टि से अच्छे हैं और जो भी तत्व दर्शक की दृष्टि को इस केन्द्र से दूर ले जाये वो ठीक नहीं है। मानवआकृति में आकर्षण का केन्द्र मानव मुख है (चित्र संख्या–16)। प्रभाविता सृजन के लिये मुख्य आकृतियों को चित्रित करते समय

खयाल रखना चाहिये कि वह आकृतियों के समूह में दब या छुप नहीं जाये। जिस प्रकार भीड़ में खड़ा व्यक्ति सामने होते हुए भी नज़र नहीं आता उसी प्रकार आकृतियों के समूह में मुख्य आकृति पर नज़र नहीं जाती। इसलिये मुख्य आकृति के पीछे रिक्त स्थान रखने से मुख्य आकृति पर प्रभाव आ जाता है। (चित्र संख्या– 17, 18, 19) छाया–प्रकाश में विरोधाभास से भी रूप में प्रभाविता आती है। अलंकृत स्थान या रूप पर दृष्टि आकर्षित होती है। किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अधिक अलंकरण दर्शक को विषय से भटका देता है।

चित्र संख्या–17

चित्र संख्या–18

चित्र संख्या–19

5. प्रवाह (ताल, लय) (Rhythm)

प्रवाह अर्थ है कि दर्शक की दृष्टि का स्वतन्त्र अबाध एवं मधुर विचरण। अच्छे चित्र में दर्शक की दृष्टि सम्पूर्ण चित्र पर बिना किसी उलझन के विचरण कर पाती है। किसी भी चित्र को देखते समय दर्शक की दृष्टि चित्र में बाँयी ओर के निचले भाग में से प्रवेश करती है और फिर सम्पूर्ण चित्र पर घूम जाती है। एक अच्छे चित्रकार में यह गुण होता है कि वह दर्शक की दृष्टि को नियन्त्रित करते हुए इच्छित मार्ग से आगे बड़ता

हुआ चित्र के मुख्य स्थान पर ले आता है। यह प्रवाह चित्रण के तत्वों रेखा, रूप, वर्ण, तान आदि मिलकर उत्पन्न करते हैं। हमें लहरदार प्रवाह में आनन्द अधिक अनुभव होता है। जैसे किसी हाई–वे पर अगर हम यात्रा कर रहे हों तो कुछ ही समय में हम यात्रा में नीरसता अनुभव करने लगते हैं और अगर हम किसी गाँव की पगडन्डी पर चल रहे हों तो हर पल हम उत्साहित और उल्लासित रहते हैं(चित्र संख्या–24, 25)। यही सुख हमें माँ की गोद या पालने में भी अनुभव होता है। सीधी सरल गति में एकरसता का भाव होता है। लहरदार रेखायें कोणदार रेखाओं से अधिक गति का आभास देती है। प्राचीन भारतीय कलाओं का आधार लहरदार रेखाऐं ही है। अजन्ता की गुफाओं में बने विभिन्न भित्ती चित्र, राजस्थानी चित्र शैली, मुगल चित्र शैली आदि में लहरदार प्रवाही रेखाओं का ही प्रयोग किया गया है(चित्र संख्या–22 व 23)। इसके अलावा आकृतियों की आवृति यानि बार–एक प्रकार की आकृति को चित्र के विभिन्न स्थानों पर बना कर भी चित्र में प्रवाह का अनुभव किया जा सकता है। (चित्र संख्या–20 व 21)

चित्र संख्या–20

चित्र संख्या–21

चित्र संख्या–22

चित्र संख्या–21

चित्र संख्या–24

चित्र संख्या–25

6. प्रमाण (अनुपात) (Proportion)

प्रमाण का अर्थ है अनुपात। किसी भी चित्र को बनाते समय हमारे मन में प्रश्न आता है कि हम बना रहे आकार को चित्र में कितना बड़ा अथवा छोटा बनाये। लम्बाई चौड़ाई का यह नाप ही अनुपात कहलाता है। यदि हमें किसी गाँव का दृश्य बनाना है तो उसमें पहाड़ कितने बड़े बनाये, वृक्ष का आकार कितना हो आदि निर्धारित करना ही प्रमाण कहलाता है। सभी आकृतियों का अनुपात एक दूसरे से सम्बद्ध है। पहाड़ और पेड़ के अनुपात में ही मानवाकृतियाँ बनाई जाती हैं।

प्रमाण के माध्यम से हम पशु–पक्षियों की भिन्नता, स्त्री–पुरूष आकारों के कद में अन्तर, मनुष्य व देवी–देवताओं के चित्रों में अन्तर निर्धारित करते हैं। मानव शरीर को बनाते समय भी प्रमाण का ज्ञान होना आवश्यक है। मानव शरीर के विभिन्न अंगों में भी आनुपातिक सम्बन्ध है। हमारी हथेली को अगर हम अपने मुँह पर ठोडी से बाल और मस्तक को मिलाने वाली रेखा पर रखें तो हमें ज्ञात होगा कि हमारा मुख और हथेली का प्रमाण एक ही है। इसे एक इकाई के रूप में ताल कहते हैं। भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में कुछ मानवीय नाप बताये गये हैं जिसे 'उत्तम नवताल' कहते हैं। इसके अनुसार किसी भी प्रतिमा के नौ भाग किये जा सकते हैं–

1 माथे के बीच से ठोडी तक	1 ताल
2. कन्धे की हड्डी से छाती तक	1 ताल
3. छाती से नाभि तक	1 ताल
4. नाभि से नितम्ब तक	1 ताल
5. पाँच व छः नितम्ब से घुटनों तक	2 ताल
6 सात व आठ घुटने से पैर के टखने तक	2 ताल

शेष नवें भाग का 1/4 भाग गला, 1/4 भाग घुटने की टोपी, 1/4 भाग पैर व 1/4 भाग माथे से चाँद तक। (चित्र संख्या–26, 27, 28)

शरीर की चौड़ाई की दृष्टि से – सिर 1 भाग, गर्दन लगभग 1/2 भाग, एक कन्धे से दूसरे कन्धे तक की चौड़ाई 3 भाग, छाती $1^{1/2}$, कटि (कमर) $1^{1/4}$, नितम्ब 2 भाग, घुटने 1/2 भाग, पैर 11/4 भाग, हाथ $4^{1/2}$

भाग, जिसमें कन्धे से कोहनी तक 2 भाग, कोहनी से कलाई तक $1^{1/2}$ तथा हथेली 1 भाग।

इसी प्रकार मुख के तीन भाग होते हैं–

1. बीच माथे से भौंहों तक,
2. भौंहों से नाक तक,
3. नाक से ठुड्डी तक।

शरीर के अनुपात की दृष्टि से स्त्री आकृति पुरूषाकृति से 1/4 भाग छोटी होती है। बच्चों की आकृति में नाप अलग होता है। उनकी आकृति बनाते समय गर्दन की लम्बाई कुछ छोटी और सिर अनुपात में कुछ बड़ कर देते हैं। इससे उनकी शरीर रचना में विभिन्नता आ जाती है।

अंकन एवं अनुर्अंकन

जब चित्रकार किसी वस्तु का अंकन छाया प्रकाश से आकृति को जिस प्रकार ठोस है वैसी ही दिखाने के ध्येय से करता है तो अंकन होता है। यह अंकन त्रिआयामी प्रभाव यानि लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई का भाव लिये हुए होता है। हमारी वास्तविक दुनिया 'त्रिआयामी' है। अर्थात इसमें तीन आयाम लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई है जिसे हम वास्तविक रूप से माप सकते हैं। किन्तु जिस धरातल पर हम चित्र बनाते हैं जैसे कागज वह द्विआयामी है, उसमें केवल दो ही आयाम – लम्बाई एवं चौड़ाई है। तीसरा आयाम गहराई कागज में नहीं है। हम वास्तविक जगत में जो भी वस्तु या आकार देखते हैं वही वस्तु या आकार हमारी कल्पना में विभिन्न रूपों में दिखाई देता है। जब हम इन वस्तुओं एवं आकारों को चित्र के रूप में कागज या अन्य धरातल पर चित्रित करना चाहते हैं तो वहाँ लम्बाई एवं चौड़ाई तो हम सरलता से बना पाते हैं किन्तु तीसरा आयाम कागज पर न होने के कारण हम गहराई बनाने में असफल हो जाते हैं। यही असफलता किसी भी नव चित्रकार को अपनी कल्पनाशीलता को चित्र के माध्यम से प्रदर्शित करने से रोकती है। चित्र में यह तीसरा आयाम मात्र भ्रम के द्वारा दिखाया जा सकता है जिसे परिप्रेक्ष्य कहते हैं। जिसे सृजित करने के लिये

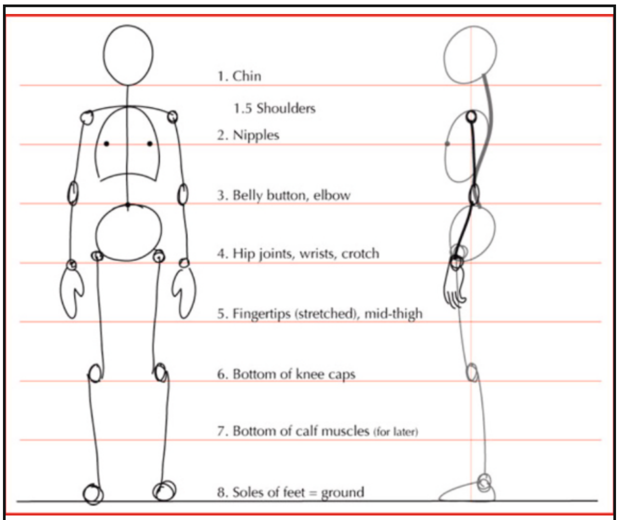

चित्र संख्या–26

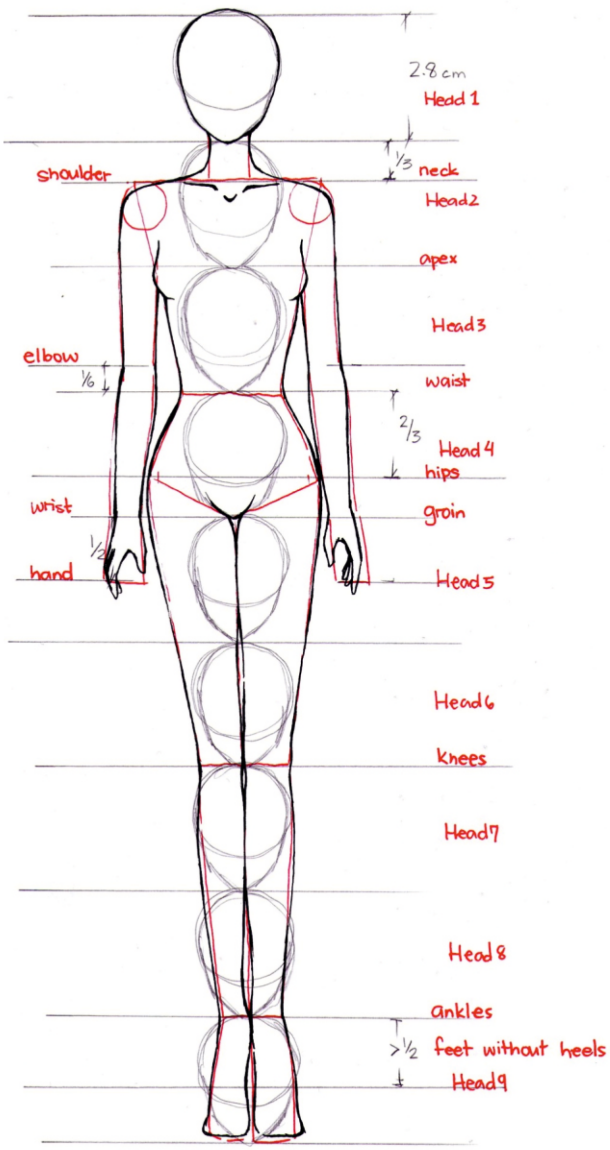

2.8 cm
Head 1
1/3
neck
shoulder
Head2
apex
Head3
elbow
1/6
waist
2/3
Head 4
hips
wrist
groin
1/2
hand
Head5
Head6
knees
Head7
Head8
ankles
>1/2 feet without heels
Head9

चित्र संख्या–27

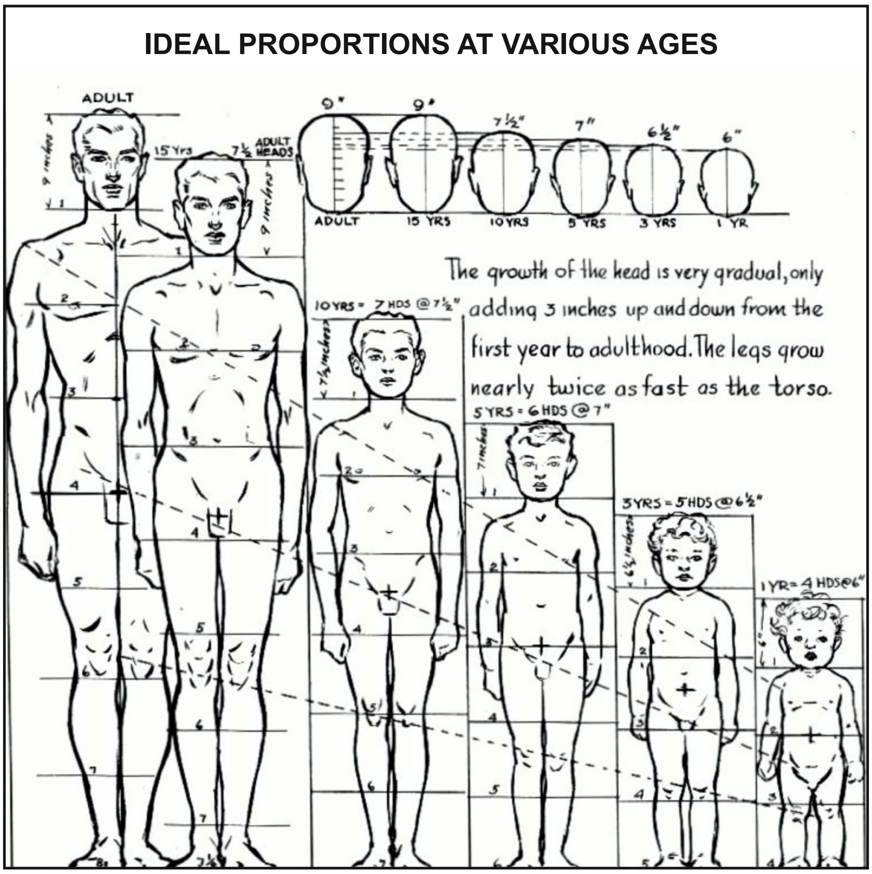

चित्र संख्या–28

छाया–प्रकाश का प्रयोग एवं रेखाओं के किसी निश्चित कोण पर झुकने के द्वारा दर्शाया जाता है। यह एक तकनीकी कार्य है। जिसे करते समय चित्रकार उलझन में आ जाता है और वह अपने को इस कार्य में असफल रहने पर चित्रकार बनने के लिये अयोग्य मान कर चित्रण छोड़ देता है। इसी उलझन को दूर करने के लिये कला में अनुअर्कन का प्रयोग सिखाया जाता है। (चित्र संख्या–29 व 30)

अनुअर्कन में वास्तविक वस्तु के तीसरे आयाम यानी गहराई का महत्व कम कर चित्र बनाया जाता है। अंकन में से रूप को ठोस दिखाने की जगह चित्रण माध्यम का प्रयोग करते हुए सरल एवं साधारणीकृत रूप चित्र या संयोजन को सुन्दर बनाने के लिये करता है तो अनुअंकन होता है। अनर्अुकित रूप की विशेषता उस माध्यम का सफल तकनीकी प्रयोग होता है जिससे वह चित्र बना हुआ हो। यहाँ उस वास्तविक आकृति का मूल रूप का महत्व कम हो जाता है। अनुअंकन में बनाई गई आकृति को सुन्दर दिखाने के लिये हम वास्तविक वस्तु के आकार की जगह कल्पना का प्रयोग करते हुए उसे मोटा, पतला, लम्बा या छोटा बना सकते हैं। इसके अलावा वास्तविक वस्तुऐं जैसी रखी हुई हैं वैसा ही बनाने के स्थान पर आकृतियों को अपनी कल्पना का प्रयोग करते हुए चित्र में अलग स्थान पर बना सकते हैं। (चित्र संख्या–31 व 32)

चित्र द्विआयामी होता है। जो वस्तुऐं व आकार हम वास्तविक रूप में देखते हैं वह हमारे लिये केवल चित्र बनाने के लिये प्रेरणा का स्त्रोत होता है। चित्र बनाते समय हमें केवल उस वस्तु का मूल आकार का ही ध्यान रख कर चित्रण करना चाहिये। वस्तु की बारीकियों को चित्रित करने की कोशिश में वस्तु या आकार का मूल भाव खत्म हो जाता है। कलाकार को छोटी–छोटी बातों को छोड़ कर सम्पूर्ण प्रभाव को चित्रित करना चाहिये। (चित्र संख्या–33 व 34)

चित्र संख्या–29

चित्र संख्या–30

चित्र संख्या–31

चित्र संख्या–32

चित्र संख्या–33

चित्र संख्या–34

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. चित्र संयोजन में सहयोग का तात्पर्य है।
   (अ) सौंदर्य का बिखराव (ब) वर्ण भरना
   (स) आकर्षण को बिखराव से बचाना (द) रूप का निर्माण करना
2. संतुलन चित्र में व्यस्थित करता है।
   (अ) रंग को (ब) रेखाओं को
   (स) आकार को (द) चित्रण के सभी तत्वों को
3. चित्र में .... आकर्षण केन्द्र होने चाहिये।
   (अ) दो (ब) तीन
   (स) चार (द) एक
4. चित्र में प्रवाह का तात्पर्य किससे है?
   (अ) दृष्टि का अबाध व मधुर विचरण (ब) विरोधाभास
   (स) दृष्टिभ्रम (द) दृष्टि का रूक रूक कर चित्र पर विचरण
5.. चित्र में गर्म वर्ण का भार .... होता है।
   (अ) कम (ब) ज्यादा
   (स) बराबर (द) इनमें से कोई नहीं

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संयोजन किसे कहते हैं?
2. वर्ण सामंजस्य के लिये कौनसी रंग योजना से सामंजस्य जल्दी आ सकता हैं?
3. संतुलन के लिये असमान भार वाले आकार कैसे संयोजित किये जाते हैं?
4. अंकन किसे कहते हैं?
5. प्रभाविता की परिभाषा लिखिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयोजन के सिद्धान्त के बारे में लिखिये।
2. अर्नुअंकन किसे कहते हैं?विस्तार से बताइये।

बहुचयनात्मक प्रश्न उत्तरमाला

1. स 2. द 3. द 4. अ 5. ब

राजस्थान की चित्रकला

राजस्थान एक विशाल मरूस्थलीय प्रदेश है जिसमें 16 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक कई छोटी–बड़ी रियासतें तथा ठिकानों के राजपूत राजा व जागीरदार जो कलाप्रेमी थे उनके राजप्रसादों में भित्ति चित्रण की श्रेष्ठ परम्परा विद्यमान रही। उनके आश्रय में निजी व मौलिक विशेषताएँ रखने वाली कला शैलियों का अद्भुत विकास हुआ। इस पर वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव अत्यधिक था। उनकी कला में नवीनता, सुमधुरता, भावुकता व रहस्यात्मकता थी। राजस्थान की पोथी चित्रण कला का मूल स्त्रोत लोक चित्रकला या प्राचीन अप भ्रंश कला या अजंता शैली ही है। इसी कारण इस शैली को पूर्ण भारतीयता का दर्जा दिया गया है। राजस्थानी चित्रकला को भौगोलिक दृष्टि से तथा शैलीगत आधार पर 4 (चार) भागों में बाँटा गया है–

1. मेवाड़ – उदयपुर, नाथद्वारा आदि।
2. मारवाड़ – जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ आदि।
3. ढूढाड़ – जयपुर, अलवर आदि।
4. हाड़ौती – बूँदी, कोटा आदि।

राजस्थानी चित्रकला के विषय – राजस्थान के लघु एवं पोथी चित्रों के निर्माण एवं विकास का मुख्य उद्देश्य अपने आराध्य देव की स्तुति व इसके सम्बन्धित चित्रों का निर्माण करना था।

1. **पौराणिक एवं कृष्णलीला के चित्र** – राजस्थानी चित्रकारों ने प्राचीन हिन्दू धर्म–ग्रन्थों, महाभारत, रामायण, भागवत, पंचतंत्र पर चित्रण किया है तथा रसिक प्रिया, गीतगोविन्द, सूरसागर, रसिक मंजरी आदि ग्रंथों पर भी अद्भुत चित्र बनाये हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण लीलाओं का चित्रण, भगवान राम व कृष्ण व विविध देवी–देवताओं को विभिन्न रूपों में चित्रण किया। इसी के साथ लोक देवता में तेजाजी, गोगाजी, रामदेव जी आदि के जीवन की घटनाओं को चित्रावलियों के माध्यम से बड़ा प्रभावी बनाया गया है, जिसे "फड़" या "फड़चित्र" कहा जाता है।

2. **रागमाला एवं ऋतुओं के चित्र** – राजस्थानी कला की तूलिका ने संगीत शास्त्र की राग–रागनियों को मूर्तिवत बनाकर कला के माध्यम से केनवास व पेपर पर उतार कर उनका दृश्य रूप–चित्र बनाने में श्रेष्ठता की महारत हासिल की। इन राग–रागनियों के चित्रों की विशिष्टता यह है कि उनका चित्रण ऋतुओं से साम्य रखते हुये किया गया है। इन चित्रों में राग–रागनियों के साथ ही अनेक प्रकार की नायिकाओं को मूर्त व साकार होकर उभारा गया है तथा वन–वाटिकाओं में आम, बड़, पीपल, केला, खजूर, चम्पा आदि के वृक्षों के चित्रों के साथ उनमें विचरण करने वाले चीते, शेर, साँप, ऊँट, गाय, हिरण, घोड़ा, चकोर, हंस, सारस, कुरंज आदि पशुपक्षियों को बनाया गया है।

ऋतुओं के चित्रों से सम्बन्धित इस शैली के ''ऋतु संहार'' तथा ''बारहमासा'' ग्रंथ प्रकृति के वातावरण व प्रभाव के भण्डार हैं।

3. **राजसी वैभव के चित्र** – राजा–महाराजाओं के जागीरदारों के सरदारों के व्यक्ति चित्र उनके महलों व दरबारों को भी बनाया गया हैं। साधु सन्तों के व्यक्ति चित्र की भी इस शैली में प्रधानता ग्लैशरीन है।

4. **घरेलू जीवन के चित्र** – राजस्थान के जनमानस का जीवन सदैव धार्मिक रहा है तथा घरेलू जीवन शुद्ध व सात्विक रहा है। इस शैली में ग्रामीण जीवन के हाट–बाजार, चौपालों, पनघटों, घर, खेत, खलिहानों के मनोरम चित्र बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ के चित्रकारों ने ग्वाले, शिक्षक, पनघट, काँटा निकालती तरूणी, अंजन लगाती तरूणी, अंगड़ाई लेती नवयौवना, दर्पण में मुख देखती स्त्री के चित्र इस शैली में जन जीवन के प्रतीक हैं। इस शैली में यात्रा करते यात्री पथिक, पेड़ों की छायां में विश्राम करते यात्री, पंखें से हवा करती नारी, हुक्के गुड़गुड़ाते ग्रामीण थके हारे पथिक को पानी पिलाती स्त्री जो शान्ति, प्रेम व समानता के भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।

मेवाड़ चित्रशैली

मेवाड़ चित्रशैली का क्षैत्र – मेवाड़ क्षैत्र राजस्थान के दक्षिणी भाग में स्थित है इसके अन्तर्गत चित्तौड़गढ़, नाथद्वारा, शाहपुरा, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ का क्षैत्र एवं जिले आते हैं। इस शैली का सौन्दर्य, राजसमंद व जयसमंद जैसी विशाल झीलों, अरावली पर्वत श्रृंखलाओं, विशाल किलों, झीलों में बने महल व शिकार दृश्य, राजप्रसाद आदि चित्रकारों को प्रेरणा देते हैं।

मेवाड़ चित्रशैली के प्रमुख विषय :– गीत गोविन्द, ढोलामारू, रागमाला, नायक–नायिका भेद, रसिक प्रिया, भागवत पुराण, रामायण आदि विषयों पर चित्रण कार्य किया गया है।

मेवाड़ चित्रशैली के प्रमुख विषेशताएँ :–

1. **संयोजन एवं आकृतियाँ** – महत्वपूर्ण व्यक्ति या घटना को मध्य में रखकर संयोजन किया गया है मानद आकृतियां चित्रों में आकृतियों की नाक लम्बी, गोल चेहरे, अण्डाकार चिबुक व गरदन के बीच का भाग अधिक भारी बनाये गये है।
2. **वेशभूषा** – पुरुषों को घेरदार जामा, मेवाड़ी पगड़ी तथा कमर में रंगीन पटका लगाये दिखाया गया है। स्त्रियों की वेशभूषा में पारदर्शी ओढ़नी तथा चोली व लहंगा पहने दिखाया गया है। गर्दन, कमर, भुजाओं व कलाइयों में काले फुदने पहनायें गये हैं।

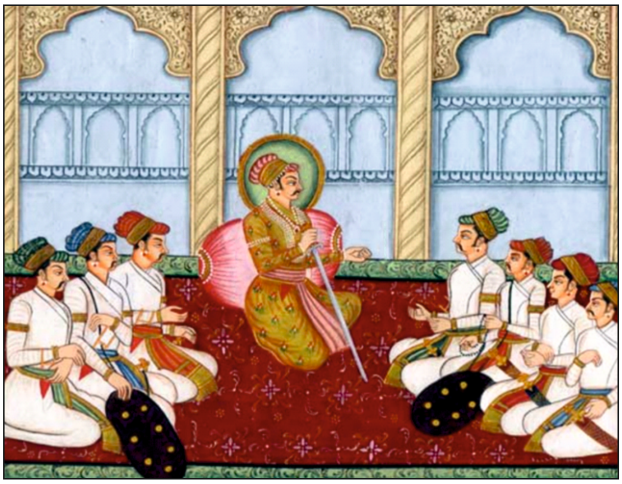

3. **आलंकारिक प्रकृति का चित्रण** – वृक्षों को अधिकांशतः झुण्डों में बनाया गया है। जल की लहरों को दिखाने के लिये लहरदार रेखाओं से बनाया गया है।
4. **पशु–पक्षी** – मेवाड़ शैली में अधिकांश चित्र कपड़े से बने खिलौने के समान पशु–पक्षी आलंकारिक ढ़ंग से बनाये गये है।
5. **भवन** – मेवाड़ के चित्रों में शिखर गुम्बददार, छज्जे, चबूतरे बनाये गये हैं। भवनों को सफेद रंग से सजाया गया है।
6. **रात्रि दृश्य** – मेवाड़ के चित्रों में रात्रि दृश्य दिखाने के लिये गहरी नीली, या धुएं के रंग की पृष्ठभूमि में सफेद बिन्दु लगाकर तारों से पूर्ण रात्रि के दृश्यों में चन्द्रमा को दिखा गया है।
7. **कृष्ण चित्रों की प्रमुखता** – मेवाड़ शैली में रागमाला चित्रों में कृष्ण को नायक तथा राधा को नायिका के रूप में दिखा गया है।
8. **सामाजिक जीवन**– मेवाड़ शैली में ग्रामीण जीवन, दरबार, जुलुस, विवाह, संगीत, उत्सव, नृत्य, युद्ध, आखेट आदि के दृश्यों को बड़ी सजीवता से बनाया गया है।

नाथद्वारा चित्रशैली

नाथद्वारा चित्रशैली का क्षैत्र –

राजस्थान की अरावली पर्वत श्रृंखला में उदयपुर के निकट बसा हुआ नाथद्वारा पुष्टि सम्प्रदाय का केन्द्र स्थल है तथा यह मेवाड़ शैली की उपशैली है। औरंगजेब के दमनात्मक कृत्यों के फलस्वरूप गोवर्धन पर्वत पर स्थित वल्लभ सम्प्रदाय के मुख्य मंदिर के श्रीनाथ जी की प्रतिमा को सुरक्षा की दृष्टि से नाथद्वारा में स्थापित किया गया।

नाथद्वारा शैली के मुख्य विषय एवं विशेषताए –

ब्रज तथा मेवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा के समन्वय से धीरे–धीरे नाथद्वारा शैली का विकास हुआ। श्रीनाथजी के प्रकटीकरण तथा उनकी लीलाओं से संबंधित चित्र बनाये गये।

श्रीनाथ जी के स्वरूप के पीछे सजावट के लिये बड़े आकार के कपड़े पर जो पर्दे बनाये जाते हैं। उनको पिछवाई कहते हैं। श्रीनाथ जी के उत्सव तथा कृष्णलीला सम्बन्धित विषय के आधार पर पिछवाइयों पर चित्रण किया जाता है। नाथद्वारा की मौलिक देन पिछवाइयों पर बने हुये विभिन्न कलात्मक चित्र हैं।

मारवाड़ चित्रशैली

मेवाड़ चित्रशैली का क्षेत्र–मारवाड़ का लगभग पूरा क्षेत्र रेगिस्तानी है जिसमे बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, नागौर तथा शेखावटी के कुछ भाग रेतीले टीलों और धोरों के प्रतीक हैं। इस क्षेत्र का जन जीवन बहुत कठिन है परन्तु इस क्षेत्र की सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्परायें बहुत ही महान एवं श्रेष्ठ हैं। इस क्षेत्र में विकसित हुयी शैली को मारवाड़ शैली के नाम से जाना गया इस शैली की प्रमुख उपशैलियाँ जोधपुर, नागौर, पाली, मेड़ता, कुचामन, बीकानेर, और किशनगढ़ है।

मारवाड़ चित्रशैली के विषय – शिवपुराण, राम–कृष्ण की कथायें, बारह–मासा, राग–रागिनी, लोकदेवता–पाबूजी, हड़बूजी, मूमलदे, निहालदे के चित्र व कथाचित्र बनाये गये है।

मारवाड़ चित्रशैली की विशेषताएँ –

मानवाकृतियाँ – इस शैली की पुरुष आकृतियों में लम्बी व सलीके से बंधी हुयी दाढ़ी तथा गोल घुमावदार रौबीली मुछे मुख्य विशेषता है। शरीर की तुलना में मुख मण्डल को छोटा बनाया गया तथा आंखें परवल के समान बड़ी बनायी गयी है। स्त्री आकृतियाँ आभूषणों से सुसज्जित एवं लम्बा बनाया गया है। खंजन पक्षी के समान नेत्र व गालों पर झूलती बालों की लट को विशेष रूप से बनाया गया है।

वेशभूषा – मारवाड़ी शैली में मानवाकृतियों की वेशभूषा में मुगल प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। उन्हें लम्बे घेरदार जामें तथा अलंकारिक शिखरदार पगड़ी पहने बनाया गया है।

प्रकृति – मारवाड़ में प्रकृति को बड़ी ही सहज रूप में बनाया गया है। इसमें उद्यान व बाग बगीचों का संयोजन बड़ी सफाई से किया गया। वृक्षों के झुरमुट में अनेक पक्षियों को बनाया गया है।

रंग – मारवाड़ शैली में खनिज रंगों का प्रयोग किया गया है। खनिज रंगों को पीस कर गोंद अथवा सरेस मिलाकर रंग तैयार किया जाता था। इस शैली में विशेष रूप से पीले रंग का प्रयोग अधिक किया गया है हाशियों में लाल रंग का प्रयोग किया गया है।

रेखायें – इस शैली में रेखाओं को अत्यधिक महीन व बारीक बनाया गया है। रेखाओं में गति व लय स्पष्ट दिखायी देती है।

किशनगढ़ चित्रशैली

किशनगढ़ चित्रशैली का क्षेत्र – मारवाड़ क्षेत्र की सबसे उत्कृष्ट एवं प्रमुख शैली किशनगढ़ में विकसित हुई। यह जयपुर, जोधपुर, अजमेर व शाहपुरा दरबार से घिरी एक छोटी रियासत थी। यह राजस्थान के मारवाड़ शैली का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। यह अरावली पर्वत श्रृंखला के मध्य छोटी–छोटी पहाड़ियों घिरी गोदोलाव झील के किनारे कसा हुआ है। जोधपुर राजा उदय सिंह के सबसे छोटे पुत्र किशन सिंह ने इसकी स्थापना की थी। इस शैली पर वल्लभ सम्प्रदाय का काफी प्रभाव है। सावन्त सिंह जो आगे जाकर नागरीदास के नाम से प्रसिद्ध हुये इनके काल में चित्रकला चर्मोत्कर्ष पर थी।

किशनगढ़ शैली के विषय – इस शैली के चित्रों का विषय गीत गोविन्द, भागवतपुराण बिहारीसतसई, कृष्ण व राधा तथा शिकार के दृश्यों को प्रमुखता से बनाया है। इसके अतिरिक्त नायिका भेद, चांदनी रात में नौकायन, दीपावली, रानियों की जल क्रीड़ा आदि भी प्रमुख है।

किशनगढ़ शैली की प्रमुख विशेषताएं –

मानवाकृतियां –किशनगढ़ शैली में स्त्रियों की आकृतियां को बहुत ही सुन्दर बनाया गया है उनके शरीर में कोमलता, लयात्मकता, पतली कमर, छरहरा बदन व उन्नत वक्ष बनाये गये हैं। उन्हें पारदर्शी ओढ़नी, चौली व लहंगा, पहने बहुत ही सुन्दर बनाया गया हैं तथा उन्हें गले में हार माथे के आभूषण, हाथों में कंगन कमर में करघनी आदि पहने बनाया गया है। उनके केश घुंघराले, लम्बे तथा कानों के पास गालों पर बालों की लट को बनाया गया है जो विशेष सुन्दरता लिये प्रतीत होती है। पुरुष आकृतियों को धोती पायजामा पहने बनाया गया है। उन्हें भी गले में मोतियों की माला व आभूषण पहनाये गये हैं।

मुखमुद्रा – इस शैली में मुखमुद्रा में खजन पक्षी के समान नेत्र बनाये गये हैं, भौहें धनुष के समान तनी हुयी एवं आँखें कजरारी बनायी गयी है, नाक तीखी, उन्नत ललाट बनाया गया है।

प्रकृति – इस शैली की प्रकृति की छटा बड़ी निराली है। इसमें बाग–बगीचों के मध्य राधा–कृष्ण, प्रेमी प्रेमिका के रूप में दर्शाये गये हैं। इसी प्रकृति के मध्य अनेक पशु–पक्षियों को बनाया गया है।

राधा–कृष्ण – इस शैली में राजा सावन्त सिंह को कृष्ण एवं उसकी पत्नी बनी–ठनी को राधा के रूप में चित्रित किया गया है। यह सभी चित्र परमात्मा में आत्मा के मिलन को दर्शाते हैं।

वर्ण विधान – इस शैली में चटक रंगों का प्रयोग किया गया है। इसमे लाल, पीले नीले रंगों का बहुतायत से

प्रयोग मिलता है। गोलाई देने के लिये रंगों में तान व पोत का प्रयोग बहुत अच्छी प्रकार से किया गया है।

रात्रि कालीन दृश्य – रात्रि कालीन दृश्य में ''चाँदनी रात में नौकायन'' को बखूबी बनाया गया है। इसके अतिरिक्त दीपावली की जगमगाहट में रात्रि कालीन दियों का पीले रंग से बहुत ही खुबसूरत बनाया गया है। इसमें टिमटिमाते दीपकों का सा आभास होता है।

रेखांकन – सभी आकृतियों के रेखांकन बारीक लचीली गतिमान बनायी गयी है।

हाड़ौती चित्रशैली

हाड़ौती चित्रशैली का क्षेत्र –

कोटा बूँदी रियासतों को मिलाकर जो सम्मिलित क्षेत्र बनता है उस समस्त क्षेत्र को हाड़ौती प्रदेश कहा जाता है। यह क्षेत्र राजस्थान के पूर्वी–दक्षिणी भाग का क्षेत्र है जो घने जंगलों से आछान्दित है। इस क्षेत्र में दो शैलियाँ कोटा व बूँदी उपशैलीयों का विकास हुआ दोनों ही शैलियाँ अपने आप में उत्कृष्टता लिये हुये हैं। समस्त छोटे–बड़े सामन्तों ने कलाकारों को आश्रय देकर चित्रकला के प्रति अपनी विशेष रूचि का परिचय देकर चित्रण किया है।

कोटा शैली के प्रमुख विषय –

इस शैली के प्रमुख विषय नायिका भेद, भागवत पुराण, ढोला मारू तथा शिकार के चित्र बहुतायता से बनाये गये हैं। इस शैली पर मुख्यत:, बृज शैली का प्रभाव दिखाई देता है।

कोटा शैली की प्रमुख विशेषताएं –

मानवाकृतियाँ – इस शैली में मानवाकृतियों को गठिला व भारी शरीर लिये बनाया गया है। बड़ी आँखें, तीखी नाक इसी प्रकार स्त्री व पुरुष दोनों का चित्रण पुष्ट एवं प्रभावशाली बनाये गये हैं।

वेशभूषा – कोटा शैली में पुरुषों को अगरखा पहने व सिर पर सुसज्जित पगड़ियाँ पहने चित्रित किया गया है। वहीं स्त्री आकृतियों को ओढ़नी, चोली व घाघरा पहने बनाया गया है। ओढ़नी को पारदर्शी व सुनहरा काम युक्त बनाया गया है।

शिकार दृश्य – कोटा शैली की प्रमुख विशेषता इसके शिकार दृश्य के चित्रण है जिसमें राजाओं को प्रभावशाली ढंग से शिकार करते दिखाया गया है। इन चित्रों में शेर, चीते, हिरण, सुअर आदि पशुओं का शिकार करते दृश्य बड़े प्रभावी बन पड़े हैं।

रंग योजना – इस शैली में प्रमुखतः लाल, हरा, सुनहरी, नीला व कहीं कहीं काले व सफेद रंगों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है।

त्यौहार व उत्सव के चित्र – इस शैली की एक प्रमुख विशेषता भारतीय त्यौहार, होली, दीपावली, नवरात्रा आदि को बड़ी ही बखूबी से चित्रण किया गया है।

बूँदी चित्रशैली

बूँदी शैली राजस्थानी परिदृश्य में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। यह शैली स्वतन्त्र एवं मौलिकता के कारण अपनी विशिष्ठ पहचान रखती हैं।

बूँदी चित्रशैली के प्रमुख विषय –

इस शैली में राग रागिनी, बारहमासा, नायक–नायिका भेद, कृष्ण–लीलायें, दरबारी दृश्य, शिकार के दृश्य एवं उत्सव व त्यौहार के दृश्य आदि पर चित्रण कार्य किया है। पौराणिक कथाओं व घरेलू जीवन के चित्र भी इस शैली में बनाये गये हैं।

बूँदी शैली की प्रमुख विशेषतायें –

मानवाकृतियाँ –इस शैली की पुरुष आकृतियाँ मरे हुये बदन लिये

बनायी गयी हैं। इसमें गोल चेहरे, मरी हुई गर्दन, पतले होठ, छोटी नाक, मारी चिंबुक लिये गतिमान रेखाओं से अंकन किया गया है। वहीं स्त्री आकृतियाँ लम्बी व पतली बनायी गयी हैं।

वेशभूषा – बूँदी शैली में पुरुष आकृतियों को लम्बा चक्कर द्वार जामा, झुकी हुयी पगड़ी, दाढ़ी मूँछ युक्त बनाया गया है। इनके काम में दुपट्टा बाँधे व चुस्त पायजामा पहने बनाया गया है। वहीं स्त्री आकृतियों को सिर पर ओढ़नी, कसी हुई चोली, काले रंग के घाघरे पहने बनाया गया है। आभूषणों का प्रयोग भी इस शैली में किया गया है।

भवन – इस शैली भवनों को विशेषरूप से चित्रित किया गया है। जिसमें छतरियाँ, गोल गुम्बज, झरोकें, बेल बूटेदार जालियाँ, सुन्दर चित्रयुक्त दीवारें, पर्दे व बैठने का आसन का चित्रण इस शैली में बड़ी सुन्दरता से किया गया है।

प्रकृति चित्रण – इस चित्र शैली में प्रकृति को बड़े सुन्दर ढ़ंग से बनाया गया है। बादलों से भरा आकाश, कमल पुष्प से भरे तालाब, पक्षी में हंस, बतखें, मोर तोते तथा पशुओं के हिरण, बन्दर सिंह आदि के चित्र बड़े मनमोहक बन पड़े हैं।

रंग योजना – बूँदी शैली के सात रंगों का प्रयोग किया गया है। जिसमें गुलाबी, लाल, सुनहरी व हरे रंग का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है। काला रंग का प्रयोग इस चित्र शैली की विशेषता है जिसमें स्त्रियों के घाघरे को काले रंग से चित्रित किया गया है।

ढुढ़ाड़ चित्रशैली

ढुढ़ाड़ चित्रशैली का क्षेत्र –राजस्थान में जयपुर, आमेर, अलवर, शेखावटी एवं उनियारा क्षेत्र को मिलाकर ढुढ़ाड़ क्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र में उक्त नामों से सम्बन्धित उप शैली का विकास हुआ। इसमें सबसे प्रमुख रूप से आमेर (अम्बर) या जयपुर उप शैली ने विकास किया।

जयपुर चित्रशैली

जयपुर राजस्थान के प्रमुख राज्यों में से एक महत्वपूर्ण राज्य था। यह राज्य अपने भव्य भवनों एवं शक्तिशाली नरेशों के कारण भी अधिक प्रभावशाली रहा। जयपुर राज्य का राजस्थानी राज्यों में सबसे पहले मुगलों से सम्बन्ध स्थापित हुआ। 1562 ईस्वी में राजा भगवानदास ने अपनी जैष्ठ पुत्री का विवाह सम्राट अकबर के साथ कर इस सम्बन्ध को और मजबूत बनाया।

जयपुर चित्रशैली के प्रमुख विषय –वैष्णव सम्प्रदाय का जयपुर शैली पर गहरा प्रभाव था। गोवर्धनधारी कृष्ण, रासमण्डल (कृष्णलीला) नायिका भेद, राग रागिनी, बारह मासा, भागवत पुराण, दुर्गा सप्तशती, बिहारी

सतसई, व्यक्ति चित्रों को प्रमुखता से बनाया गया है।

जयपुर चित्रशैली की प्रमुख विशेषताऐं –

आकृतियाँ – जयपुर शैली में शारीरिक आकृतियों को सुगठित ढंग से गोल चेहरों के रूप में बनाया गया है सीमा रेखाओं द्वारा चेहरे पर कोमलता का प्रभाव दर्शाया गया है। आकृतियों में एक चश्म चेहरे रेखाओं में सफाई गोलाई का भाव उत्पन्न किया गया है।

वेशभूषा – जयपुर शैली में पुरुष आकृतियों को ढ़ीले पायजामे तथा अगरखियाँ पहने बनाया गया है गले में मोतियों की माला को पहनाया गया है। वहीं स्त्रियों को गहरे रंग के घाघरे में चित्रित किया गया है। कसी हुई चोली एवं पारदर्शी ओढ़नी पहने दर्शाया गया है।

भवन – यह शैली तथा वास्तविक नगर अपने भव्य भवनों, महलों, चौराहों मीनारों, छतरियों के लिये प्रसिद्ध हैं। इन्हीं सभी रूपों को चित्रकार ने अपने सुन्दर चित्रों में चित्रित किया है।

रंग विधान – जयपुर शैली में शीतल रंगों का प्रयोग अधिक किया गया है तथा रेखाओं को बारीक बनाने के लिये सुनहरी स्याही का प्रयोग कर उसे श्रेष्ठता प्रदान की गयी है तथा चित्रों में रंग योजना के अनुसार छाया प्रकाश को बड़ी उत्तमता एवं सहजता के साथ चित्रण किया गया है।

महत्वपूर्ण बिन्दु–

1. राजस्थानी चित्रकला को भोगोलिक दृष्टि से तथा शैलीगत आधार पर चार (मेवाड, मारवाड, ढूढाड, हाडौती) भागों मे बांटा गया है।
2. राजस्थानी चित्रकला के प्रमुख विषय– पौराणिक एवं कृष्णलीला के चित्र, रागमाला व ऋतुओं के चित्र, राजसी वैभव के चित्र, घरेलु जीवन के चित्र हैं।
3. मेवाड शैली का सौन्दर्य विशाल झीलों, अरावली पर्वत श्रृंखलाओं, विशाल किलो, झीलों में बने महल, शिकार दृश्य चित्रकारों को प्रेरणा देते है।
4. मारवाड क्षेत्र को जन जीवन बहुत कठिन है परन्तु इस क्षेत्र की सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्परायें बहुत ही महान एवं श्रेष्ठ हैं।
5. हाडौती क्षेत्र राजस्थान के पूर्वी–दक्षिणी भाग का क्षेत्र है जो घने जंगलों से आच्छान्दित है। इस क्षेत्र मे कोटा व बूंदी शैली का विकास हुआ जिनमे शिकार दृश्यों को बहुतायता से बनाया गया है।
6. राजस्थान में जयपुर, आमेर, अलवर, शैखावाटी, उनियारा क्षेत्र को मिलाकर ढूढाड क्षेत्र कहा जाता है। यह क्षेत्र भव्य महलों, हवेलियों व शक्तिशाली नरेशो के कारण प्रभावशाली रहा है इस कारण कला का विकास यहां श्रेष्ठता से हुआ है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. राजस्थानी चित्रकला को भौगोलिक दृष्टि से कितने भागों मे बांटा गया है–
   (अ) 2 (ब) 3 (स) 4 (द) 6
1. राजस्थान के लघुचित्र एवं पोथी चित्रो के निर्माण का मुख्य उद्देश्य था–
   (अ) राजाओं की स्तुति (ब) जागीरदारों की स्तुति (स) कृष्ण की स्तुति (द) आराध्यदेव की स्तुति
2. राजस्थान की पोथी चित्रणकला का मूलस्त्रोत क्या है–
   (अ) लोक चित्रकला (ब) प्राचीन अपभ्रंष कला (स) अजन्ता शैली (द) उपरोक्त सभी
3. नाथ द्वारा के मुख्य मन्दिर मे किसकी प्रतिमा स्थापित है–
   (अ) श्री नाथ जी (ब) श्री राम जी (स) श्री कृष्ण जी (द) श्री विष्णु जी
4. किशनगढ शैली किस शैली की उपशैली है–
   (अ) मेवाड (ब) मारवाड (स)ढूढांड (द) हाडौती

अतिलघुरात्मक प्रश्न–

1. नाथद्वारा में किस सम्प्रदाय का मुख्य मंदिर है?
2. किशनगढ शैली के प्रमुख चित्र का नाम लिखिए?
3. किस शैली मे स्त्रियों के नयन खंजन पक्षी के समान बनाये गये है?
4. सबसे अधिक शिकार दृश्य किस शैली मे बने है?
5. वैष्णव सम्प्रदाय का किस शैली पर गहरा प्रभाव है?

लघुरात्मक प्रश्न–

1. रागमाला और ऋतुओं के चित्र मे चित्रकार न क्या दर्शाया है?
2. राजसी वैभव के चित्रों का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
3. राजस्थानी चित्रकला में चित्रकार ने घरेलू जीवन` चित्रों मे किन–किन विषय आधारित चित्रों का निर्माण किया है?
4. अलंकारिक चित्रों से आप क्या समझते है?
5. रात्रिकालीन चित्रण का निर्माण किस शैली मे अधिक हुआ है तथा उनके विषय क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. राजस्थानी चित्रकला का परिचय देते हुए उसके प्रमुख चित्र विषयों पर आलेख लिखिए?
2. किशनगढ शैली की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
3. दूढांड चित्रशैली का परिचय देते हुए उनके विषय एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
4. शिकार दृश्य किस–किस शैली मे प्रमुखता से बने है प्रमुख शिकार दृश्यचित्रों का वर्णन कीजिए?
5. मेवाड शैली की प्रमुख विशेषताए बताइए?

बहुचयनात्मक उत्तरमाला –

1. स. 2. द 3. अ 4. ब

राजस्थान के समकालीन चित्रकार

1. रामगोपाल विजयवर्गीय
2. भवानीचरण गुई
3. गोवर्धनलाल जोशी (बाबा)
4. देवकीनन्दन शर्मा
5. कृपाल सिंह शेखावत
6. परमानन्द चोयल
7. द्वारका प्रसाद शर्मा
8. राम जैसवाल
9. डॉ. विद्यासागर उपाध्याय
10. किरण मुर्डिया

रामगोपाल विजयवर्गीय

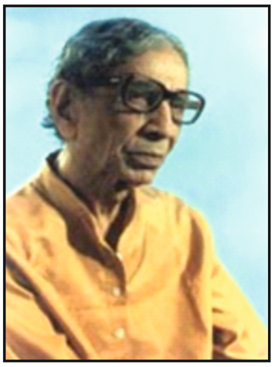

रामगोपाल विजयवर्गीय का जन्म सवाईमाधोपुर जिले के बालेर गाँव में 1905 में हुआ था। इन्होंने 1924 में राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट जयपुर से कला की शिक्षा ग्रहण की शैलेन्द्र नाथ उनके गुरु थे तथा वह राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट के प्राचार्य भी थे। श्री रामगोपाल विजयवर्गीय उनके प्रिय शिष्यों में से एक थे। वह कला के प्रभावी अध्ययन के लिये बाद में कोलकाता गये। इनके चित्रों की प्रथम प्रदर्शनी 1928 में शिल्प सोसायटी और ललित कला अकादमी कोलकाता में लगी। इसके बाद भारत के अनेक शहरों में इन्होंने अपने चित्रों को प्रदर्शित किया। इनके चित्र भारतीय किवदतियों और साहित्य कृतियों से प्रेरित है। वे 1945 से राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स के प्राचार्य पद पर रहे तथा 1958 से 60 तक राजस्थान ललित कला अकादमी के उपाध्यक्ष रहे। 4 मई 2003 को निधन से कला जगत को अपूर्णीय क्षति हुई है।

प्रमुख चित्र कृतियाँ – मेघदूत चित्रावली, बिहारी चित्रावली, राग–रागिनी, अभिज्ञान शाकुन्तल, रघुवंशम्, गीतगोविन्द, उमर खैय्याम तथा राजस्थानी पेन्टिंग रहे हैं।

पुरस्कार – श्री रामगोपाल विजयवर्गीय के 1934 महाराजा पटियाला। 1958 में राजस्थान ललित कला अकादमी पुरस्कार, 1984 में भारत सरकार द्वारा पद्म श्री , 1988 में केन्द्रिय ललित कला अकादमी नई दिल्ली

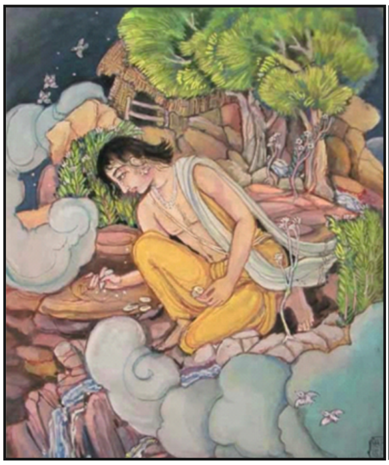

द्वारा पुरस्कृत किया गया। नई दिल्ली में 63वीं वार्षिक कला प्रदर्शनी के अवसर पर इन्हें भारत रत्न की उपाधि से अलंकृत किया गया। 1998 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन में साहित्य वाचस्पति के सम्मान से सम्मानित किया गया।

चित्रों की विशेषता – इनके चित्रों में तीखे नाक नक्श, लहराते अंग–प्रत्यंग, पारदर्शी वस्त्रों में कोमल शारीरिक सौन्दर्य, लचीली रेखांकन तथा अद्वितीय धूमिल रंग योजना से इनके चित्र श्रेष्ठता की पराकाष्ठा लिये हैं।

बी.सी. गुई

बी.सी. गुई का जन्म 1910 में वाराणसी शहर में एक बंगाली परिवार में हुआ। इनका परिवार आध्यात्मिक और भारतीय सभ्यता व संस्कृति में गहरा विश्वास रखता था अतः प्रारम्भ से ही उन्हें भारत के सांस्कृतिक परिवेश तथा तीज त्यौहारों से लगाव रहा इसका कारण उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि थी। आपने 1939 में लखनऊ स्कूल ऑफ आर्ट से कला की शिक्षा प्राप्त की तथा कुछ अन्तराल बाद स्लेड स्कूल ऑफ आर्ट, लंदन में आपने कला का गहन अध्ययन किया वहीं से आपने ऐचिंग विधा एवं व्यक्ति चित्रण में महारत हासिल की। आपने मेयो कॉलेज में वर्षों तक कलाअध्यापन का कार्य किया तथा वहीं से ही सेवा निवृत हुये। प्रारम्भ में बी.सी. गुई ने बंगाली शैली जिसे वाश तकनीक कहते हैं उस विद्या में चित्रण कार्य किया।

प्रमुख चित्र – बी.सी. गुई के प्रमुख चित्रों में रामलीला, शिव–ताण्डव, कालिदास, शकुन्तला, राधाकृष्ण, सरस्वती, कालिया मर्दन आदि रहे हैं।

पुरस्कार – राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, अकेडमी फाइन आर्ट कलकत्ता, मैसूर कला प्रदर्शन, हैदराबाद आर्ट सोसायटी द्वारा पुरस्कृत किया गया।

गोवर्धन लाल जोशी (बाबा)

गोवर्धन लाल जोशी का जन्म उदयपुर के पास कांकरोली ग्राम में हुआ था। इनके पिता श्री भगवानलाल जोशी कांकरोली के प्रसिद्ध द्वारिकाधीश मन्दिर के सेवक थे तथा वे मन्दिर में चित्रण कार्य हेतु सामग्री की व्यवस्था करते थे। वहीं उनके पिता ने गोवर्धन लाल जोशी को चित्रण कार्य करते देखा तो उन्हें आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने गोवर्धन लाल जोशी को नाथद्वारा के प्रसिद्ध चित्रकार घासीराम जी के पास भेजा तथा उन्होंने चित्रकला का अभ्यास किया। विद्याभवन उदयपुर के निदेशक श्री डॉ. मोहन सिंह मेहता ने उनकी कला प्रतिभा को पहचाना तथा उन्हें विद्या भवन उदयपुर में कला शिक्षक रूप में नियुक्त किया तथा वह सेवा निवृत्ति तक वही कार्य करते रहे।

डॉ. मोहन सिंह मेहता ने उन्हें कला शिक्षा में पारंगतता हासिल करने हेतु एक वर्ष के लिये शान्ति निकेतन भेजा जहाँ रविन्द्रनाथ ठाकुर अवनिन्दनाथ ठाकुर, नन्दलाल वसु आदि के साथ उनकी कला में और निखार आया।

पुरस्कार – बाबा ने अनेक चित्र प्रदर्शनियाँ लगाई व अनेक पुरस्कार प्राप्त किये। राजस्थान ललित कला अकादमी के उपाध्यक्ष रहे तथा उन्हें कलाविद की उपाधि से विभूषित किया।

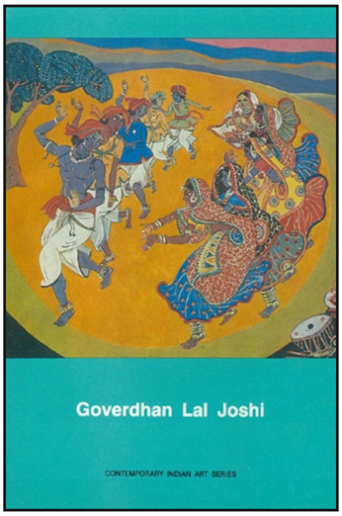

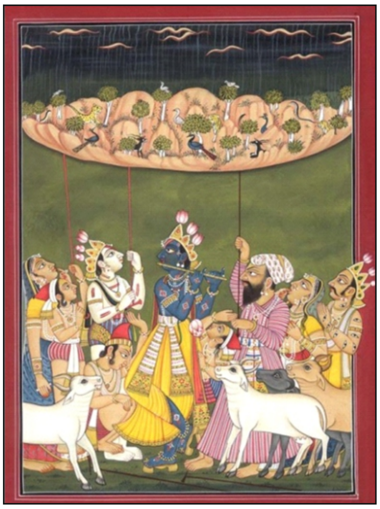

प्रमुख चित्र – बाबा के प्रमुख चित्रों में गणगौर की सवारी, जौहर की ज्वाला, कला की भावी, श्रम और विश्राम, हर्ष का त्यौंहार, सबसे महत्व पूर्ण उन्होंने भील जीवन के अनेक पक्षों का चित्रण किया तथा उन्हीं से बाबा को एक नई पहचान मिली।

देवकीनन्दन शर्मा

देवकीनन्दन शर्मा का जन्म सन् 1919 में अलवर जिले में हुआ था। इनकी कला शिक्षा महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स जयपुर में श्री शैलेन्द्रनाथ डे के निर्देशन में हुयी तथा शान्ति निकेतन कलकत्ता में श्री नन्दलाल बोस के मार्ग दर्शन के फ्रेस्को चित्रण का अध्ययन किया। देवकीनन्दन शर्मा वनस्थली विद्यापीठ में चित्रकला के प्रोफेसर व अध्यक्ष पद पर कार्य करते हुये सेवानिवृत हुये।

श्री शर्मा ने परम्परागत चित्रण, वॉश पद्धति, फ्रेस्को व टेम्परा पद्धति में विशेषतः चित्रण किया प्रारम्भ में आपने ग्रामीण दृश्यों को बनाया। श्री देवकीनन्दन शर्मा को पक्षी चित्रकला के रूप में प्रसिद्धि मिली इन्होंने, मोर, कौए, कबूतर, बुलबुल आदि पक्षियों को बहुत ही सुन्दर चित्रण किया।

प्रमुख प्रसिद्ध चित्र – इनके प्रसिद्ध चित्रों में ढोला मारू, मोर, कौएं, गाँव, शहर, सूर्योदय, सूर्यास्त, त्यौंहार, यात्रा, बैलगाड़ी, ग्वाला कृष्ण, बाजार और विश्राम आदि हैं।

कृपाल सिंह शेखावत

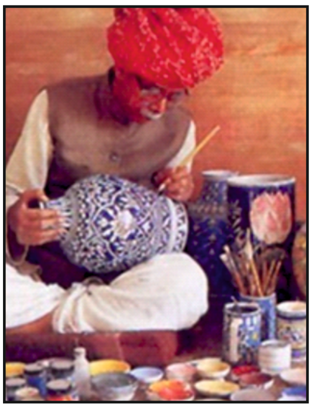

कृपाल सिंह शेखावत का जन्म 11 दिसम्बर, 1922 को सीकर जिले के मऊ गाँव में हुआ। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक कला शिक्षा पिलानी के कला प्रसिद्ध चित्रकार श्री भूर सिंह शेखावत के सानिध्य में रह कर सीखी। 1942 में उन्होंने फाइन आर्ट कॉलेज, लखनऊ में प्रवेश लिया तथा एक साल बाद ही 1943 से 1947 तक शान्ति निकेतन कोलकाता से आर्ट डिप्लोमा के प्रवेश लेकर शिक्षा ग्रहण की तथा 1948 में वे वहीं शान्ति निकेतन में ही कला शिक्षक बन गये। 1949 में उन्होंने अपने चित्रों की एकल प्रदर्शनी की।

इसी प्रकार 1950 में इन्होंने लखनऊ, इलाहाबाद, और दिल्ली में अपनी कलाकृतियों का प्रदर्शन एकल चित्र प्रदर्शनी के माध्यम से किया इससे इनको काफी प्रसिद्धि मिली।

कृपाल सिंह शेखावत की कला को देखे तो इन्होंने विभिन्न माध्यमों में कार्य किया। इन्होंने कागज पर टैम्परा पद्धति, फ्रेस्कोम्यूरल्स, सिल्क, हाथी दाँत पर वॉश तथा जल रंगों में कलाकृतियाँ रची।

प्रसिद्ध चित्र – कृपाल सिंह शेखावत के प्रसिद्ध चित्रों में मैरिज ऑफ पाबूजी राठौड़, भरत कैरींग रामाज़ सैंडिल्स, मीरां का जन्म, मीरा विवाह, राठौड़ ऑन हॉर्स बैक रामदेव जी, गोगाजी चौहान, हड़बूजी सांखला, रतन–राणा, केसर कलमी फ्लाइंग विद पाबूजी राठौड़, इनकी प्रमुख कृतियाँ थी।

कृपाल सिंह राठौड़ का महत्वपूर्ण योगदान ब्लू पोटरी के विकास में रहा जयपुर की ब्लू पोटरी तकनीक को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान श्री कृपाल सिंह शेखावत के कारण ही बनी।

पुरस्कार – हस्तशिल्प के क्षेत्र में आपके प्रयासों के कारण 1967 में राष्ट्रपति पुरस्कार दिया गया। वर्ल्ड क्राफ्ट्स कौंसिल न्यूयॉर्क ने विश्व के सबसे प्रतिष्ठित 10 शिल्पियों में से एक मानते हुये 1974 में टोरन्टों में सम्मानित किया तथा 1974 में कला उत्कृष्ट उपलब्धियों के लिये भारत सरकार ने इन्हें 'पद्म श्री' की उपाधी से सम्मानित किया।

परमानन्द चौयल

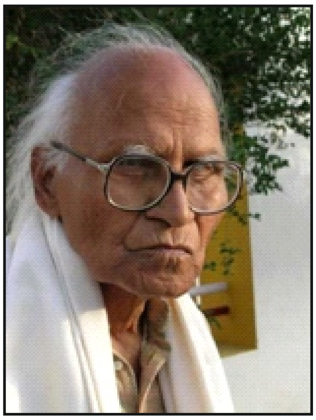

परमानन्द चौयल का जन्म 5 जनवरी 1924 को कोटा राजस्थान में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद 1948 में राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, जयपुर से डिप्लोमा किया तथा उच्च अध्ययन के लिये जयपुर से वह जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट मुम्बई चले गये; तत्पश्चात कला के विशेष अध्ययन के लिये 1961–62 में वह लन्दन के स्लेड स्कूल ऑफ फाइन आर्ट में प्रवेश लेकर कला की उच्चता की शिक्षा ग्रहण की।

वहां से शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप राजकीय महाविद्यालय कोटा में प्राध्यापक पद पर कार्य किया। इसके बाद सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर के कला विभाग को सम्भाला तथा अन्त तक वहीं कार्य करते हुये सेवानिवृत हुये।

श्री चोयल ने अपने आस–पास के वातावरण को यथार्थ रूप में चित्रित करने का प्रयास किया तथा तेल रंगों को जल रंगों की भांति प्रयोग कर सुन्दर दृश्य चित्र बनायें। आपको आपके ''भैस'' विषय आधारित चित्रों के कारण विशेष पहचान मिली।

प्रमुख चित्र – चौयल की प्रमुख कृतियों में 'मेरी गली के आस–पास', भैंस, चित्तौडगढ़, दो नारियां, कश्मीर का दृश्य, लन्दन में बारात, डूबता अतीत, आशा के मेघ, खिड़की, माँ एवं शिशु विख्यात रही है।

पुरस्कार – चौयल को राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा अनेक बार पुरस्कृत किया गया। 1983 में ऑल इण्डिया फाइन आर्ट एवं क्राफ्ट सोसायटी (।प्थ्।ब्) द्वारा सम्मानित किया गया। 1980 में द इण्डियन अकादमी

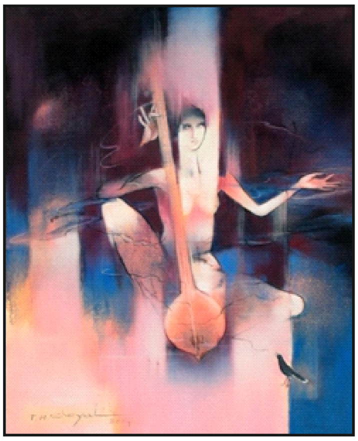

ऑफ आर्ट्स अमृतसर द्वारा पुरस्कृत किया। तथा 1981 से 1983 तक राजस्थान ललित कला अकादमी के उपाध्यक्ष रहे। 1981 में राजस्थान ललित कला द्वारा कलाविद् की उपाधी से सम्मानित किया गया।

राम जैसवाल

राम जैसवाल का जन्म 5 सितम्बर 1937 को उत्तर प्रदेश में मथुरा जनपद के शाहाबाद गाँव में हुआ था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात लखनऊ के कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट से डिप्लोमा लिया। श्री जैसवाल ने कॉलेज में अध्ययन के दौरान काफी प्रसिद्धि एवं पुरस्कार प्राप्त किये।

डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात वे लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में कलाकार के पद पर तीन वर्ष कार्य करते रहे। इसके पश्चात आप ''मेरठ कॉलेज'' में प्राध्यापक रहे। पर थोड़े समय पश्चात ही आप अजमेर के दयानन्द महाविद्यालय में प्राध्यापक पद पर नियुक्त होकर सेवानिवृत्ति तक यहीं कार्य करते रहे। श्री जैसवाल ने बंगाल स्कूल की वाश तकनीक, जल रंग, तैल रंग एवं टेम्परा में अनेक चित्रों का निर्माण किया। तथा चित्रों के विषयों में भी आपने विविधता रखी। समाज की विसंगतियों पर भी आपने अनेक चित्र बनाएं जो व्यंगता को दर्शाते हैं।

प्रमुख चित्रों – राम जैसवाल के प्रमुख चित्रों में दूसरी ईद, शिव, वर्षा, पूजा का दिन, आंगन में दोपहरी स्ट्रीट सिगर्स, प्रणय, आषाढ़ का प्रथम दिन, युक्लिप्टस, विरहणी, हवाएं, पुष्कर आदि प्रमुख है।

साहित्य – राम जैसवाल उच्च कोटी के चित्रकार के साथ साथ कवि व साहित्यकार भी हैं। उनका काव्य संग्रह, ''बिम्ब प्रतिबिम्ब'' कहानी संग्रह ''असुरक्षित, उग्रह, समय दंश तथा विषजल'' आदि प्रकाशित हुये।

पुरस्कार एवं सम्मान – राम जैसवाल को ललित कला परिषद् लखनऊ द्वारा सन् 1955,56, 58 में वार्षिक पुरस्कार, राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा सन, 1968, 70, 71 तथा 88 में पुरस्कृत किया गया। अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता सन् 1970 में हरियाणा भाषा विभाग द्वारा प्रथम पुरस्कार, राजस्थान साहित्य अकादमी ने 1974 में कहानी पुरस्कार तथा 1980 में काव्य पुरस्कार प्रदान किया।

द्वारका प्रसाद शर्मा

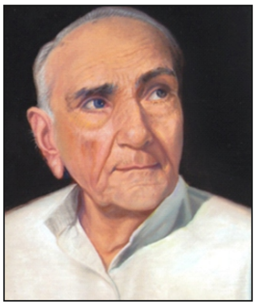

द्वारका प्रसाद शर्मा का जन्म 6 मार्च, 1922 को बीकानेर राजस्थान में हुआ। इन्होंने अपना कार्य पारम्परिक प्रारम्भिक चित्र बनाने से शुरू किया। बीकानेर में गोपाल जयपुरिया, जैसे श्रेष्ठ गुरुओं से आपने शिक्षा ग्रहण की। श्री इलाही बक्स जैसे कलाकारों से यथार्थवादी कला और व्यक्ति चित्रण की शिक्षा ली। इन्होंने केतकर कला संस्थान से कला अध्ययन की गहराईयों को सीखा तथा तेल रचना और यथार्थवादी काम कर जल रंग की पारम्परिक शैली में आपने विशेष महारत हासिल की।

पुरस्कार –राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा आपको 1958, 1959, 1960, 1961 और 1967 में राज्य स्तरीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया 1979 में द्वारका प्रसाद शर्मा जी को राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा ''कलाविद्'' को सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया।

1991 में ऑल इण्डिया फर्म आर्ट एवं क्राफ्ट सोसायटी द्वारा श्री द्वारका प्रसाद जी को पुरस्कृत किया गया। 1993 में महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन द्वारा इन्हें सम्मानित किया गया।

इसके अतिरिक्त है राजस्थान के राज्यपाल द्वारा भी 1984 और 1995 में सम्मानित कर पुरस्कृत किया।

डॉ. विद्यासागर उपाध्याय

चित्रकार डॉ. विद्यासागर उपाध्याय का जन्म 24 नवम्बर, 1948 को बांसवाड़ा जिले के प्रतापपुर गाँव में हुआ। आपने अपना कला अध्ययन मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय से 1970 में एम.ए. चित्रकला विषय में किया तथा 1997 में इसी विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधी प्राप्त की।

डॉ. उपाध्याय ने अपने कला अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात स्कूल शिक्षा में कला अध्यापन का कार्य किया। कुछ समय बाद ही आप राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स जयपुर में चित्रकला के प्राध्यापक नियुक्त हुये। तथा अन्त में इसी संस्थान के प्राचार्य पद से आप सेवा निवृत्त हुये।

संस्थान में कार्य करते हुये आपने अपना मौलिक सृजन कर इस क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई।

प्रमुख चित्र –विद्यासागर उपाध्याय की कला को हम दो पक्षों में बांट सकते हैं जिसमें पहला पक्ष उनके चित्रों में काले रंग का प्रयोग या श्वेत–श्याम चित्र। दूसरा पक्ष उनके शीर्षक विहीन चित्र जो दर्शक को अपनी और आकर्षित करते हैं।

इन्होंने अपने चित्रों में सदैव नवीन आकारों को जन्म दिया जिनमें तंत्र, ज्यामिति प्रकृति को संजोया है इसी के साथ आपने बादलों, पर्वतों, गोल पत्थरों, वृक्षों और जल की

तरंगों का चित्रण बहुत श्रेष्ठता से किया है।

पुरस्कार –डॉ. विद्यासागर उपाध्याय को अनेक पुरस्कार मिले हैं जिनमें प्रमुख हैं –राजस्थान ललित कला अकादमी जयपुर द्वारा आपको सन् 1969, 1972, 1975, 1978, 1980, 1982, 1984 में राज्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया तथा इसी के साथ 1991 में अखिल भारतीय कला पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

राष्ट्रीय ललित कला अकादमी नई दिल्ली द्वारा 1985 में पुरस्कृत किया गया तथा उत्तरप्रदेश राज्य अकादमी द्वारा 1988 में तथा राजस्थान सरकार द्वारा 1991 में पुरस्कृत व सम्मानित किया गया।

किरण मुर्डिया

चित्रकार किरण मुर्डिया का जन्म 1951 में राजस्थान के उदयपुर शहर में हुआ था। इन्हे बचपन से प्राकृतिक दृश्यों को बनाने का शौक था अतः इनके माता पिता नें किरण को कला शिक्षा देने का मन बचपन में ही बना लिया था।

किरण ने 1972 में सुखाडियाँ विश्व विद्यालय उदयपुर से एम. ए. किया। आपने स्वतन्त्र चित्रण के साथ ही आपने मीराँ कन्या महाविद्यालय उदयपुर में चित्रकला विषय की प्राध्यापक के रूप में कार्य किया।

चित्रों के विषय– किरण मुर्डिया के चित्रों के विषय अपने आस पास के वातावरण, झील, पर्वत, झरने, हवेलियाँ, झरोखे, बावडी, रही है। आपने माउन्ट आबू की प्राकृतिक दृश्यों से प्रभावित हो कर अनेक चित्र बनाये है। जिसमें झरना, बाग, पेड़, पहाड़ी, घाटी, सर्पाकार घाटी, सर्पीले रास्ते प्रमुख है।

पुरस्कार – किरण मुर्डिया को राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा सत्र 1974, 1980, 1986, में राज्य स्तरीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया तथा 1987 में ललित कला अकादमी जयपुर द्वारा राष्ट्रीय स्तर का पुरस्कार प्राप्त किया।

इसके साथ ही किरण मुर्डिया केन्द्रीय ललित कला अकादमी नयी दिल्ली, ऑल इण्डिया फाइन ऑर्ट एण्ड क्राफ्ट सोसायटी नई दिल्ली द्वारा आयोजित चित्र प्रदर्शनियों में अपनी भागीदारी निभाई तथा भारत के अनेक राज्यों में अपने एकल चित्रों की चित्र प्रदर्शियॉ कर चुकी है।

महत्वपूर्ण बिन्दू–

1. रामगोपाल विजयवर्गीय के चित्रों में तीखे नाक नक्श, लहराते अंग–प्रत्यंग, पारदर्शी वस्त्रों मे कोमल शारीरिक सौन्दर्य, लचीली रैखांकल तथा अद्वितीय धुमिल रंग योजना इनके चित्रों की विशेषता है।

2. भवानी चरण गुई वाश तकनीक के श्रेष्ठ कलाकार थे उनके प्रमुख चित्रों शिव–तांडव, कालीदास, शकुन्तला, राधाकृष्ण, सरस्वती, कालिया मर्दन आदि है।
3. गोवर्धन लाला जोशी (बाबा) के प्रमुख चित्रों मे गणगौर की सवारी, जौहर ज्वाला, श्रम और विश्राम, हर्ष का त्यौहार आदि है इन्होंने भीलों के जनजीवन के अनेक पक्षों का चित्रण किया है।
4. देवकीनन्दन शर्मा ने वाश पद्धति, फ्रेस्को व टेम्परा पद्धति में विशेषतः चित्रण किया है यह एक श्रेष्ट पक्षी चित्रकार के रूप मे जाने जाते है।
5. कृपाल सिंह शैखावत का महत्वपूर्ण योगदान ब्लू पोटरी के विकास मे रहा है इन्होंने जयपुर की ब्लू पोटरी की तकनीक को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पहचान दिलवाई है।
6. परमानन्द चोयल कोटा मे जन्मे व सुखाडिया विश्वविद्यालय उदयपुर के कला विभाग मे सेवानिवृति तक अपना योगदान दिया आपको 'भैस' विषय आधारित चित्रों से विशेष पहचान मिली है।
7. रामजैसवाल दयानन्द महाविद्यालय अजमेर के चित्रकला विषय मे विभागाध्यक्ष रहे तथा यही से सेवानिवृत्त हुए वे वाश तकनीक, जलरंग, टेम्परा व तेल रंग के श्रेष्ठ कलाकार है। समाज की विसंगतियों पर भी आपने अनेक चित्र बनायें हैं।
8. विद्यासागर उपाध्याय की कला को दो पक्षो बांटा गया है एक पक्ष श्वेत–श्याम चित्र व दूसरा शीर्षक विहिन चित्र जो दर्शक को अपनी और आकर्षित करते है।
9. किरम मुर्डिया ने अपने आसपास के वातावरण, झीलों, पर्वत, झरने, हवेलियां, झरोखे, बावड़ी, आदि को बड़ी श्रेष्ठता से बनाये है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. श्री रामगोपाल विजयवर्गीय को भारत सरकार द्वारा 'पद्म श्री' की उपाधि से किस सन् मे अलंकृत किया गया है–

   (अ) 1984   (ब) 1934

   (स) 1988   (द) 1990

2. बी. सी. गुई का जन्म किस परिवार मे हुआ है–
   (अ) गुजराती (ब) राजस्थानी (स) बंगाली (द) पंजाबी
3. गोवर्धन लाला जोशी का जन्म किस ग्राम मे हुआ–
   (अ) नाथद्वारा (ब) राजसमन्द (स) उदयपुर (द) काकरोली
4. देव की नन्दन शर्मा को किस चित्रकार के रूप में जाना जाता है–
   (अ) पशु चित्रकार (ब) पक्षी चित्रकार (स) प्रकृति चित्रकार (द) मानव चित्रकार
5. ब्लू पोटरी के प्रसिद्ध चित्रकार कौनसे है–
   (अ) कृपाल सिंह शैखावत (ब) परमानन्द चौयल
   (स) रामजैसवाल (द) द्वारका प्रसाद शर्मा

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. परमानन्द चोयल ने किस पशु का विशेष रूप से चित्रण किया है?
2. राम जैसवाल को चित्रकार के अलावा और किस रूप मे जाना जाता है?
3. द्वारका प्रसाद शर्मा ने यथार्थ वादि चित्रण किस कलाकार से सीखा?
4. डा. विद्यासागर उपाध्याय का जन्म कहां हुआ?
5. किरण मुर्डिया को बचपन मे कैसे चित्र बनाने का शौक था?

लघुरात्मक प्रश्न–

1. गोवर्धनलाल जोशी (बाबा) का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिये?
2. देवकीनन्दन शर्मा के प्रसिद्ध चित्रों के विषयों की जानकारी दीजिए?
3. परमानन्द चोयल को मिले पुरस्कारों के बारे मे बताइए?
4. द्वारका प्रसाद शर्मा का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिये?
5. किरण मुर्डिया के चित्रों का संक्षिप्त परिचय दीजिये?

निबंधात्मक प्रश्न–

1. रामगोपाल विजयवर्गीय के जीवन परिचय एवं कला पर लेख लिखिये?
2. कृपाल सिंह शेखावत के प्रसिद्ध चित्र एवं उनके विशिष्ट कार्यो का वर्णन कीजिये?
3. राम जैसवाल के जीवन एवं उनके चित्रो पर लेख लिखिये?
4. विद्यासागर उपाध्याय के कृतित्व एवं पुरस्कारों की विस्तृत जानकारी दीजिये?
5. भवानी चरण गुई का जीवन परिचय एवं उनके चित्रों की जानकारी दीजिये?

बहुचयनात्मक उत्तरमाला –

1. अ. 2. स 3. द 4. ब 5. अ

विभिन्न कला शैलियों का वर्गीकरण

(जनजातीय कला, लोक कला, बाल कला, शास्त्रीय, आधुनिक कला)

जनजातीय कला

विश्व के विभिन्न भागों में निवास करने वाली आदिवासी वन्य जन–जातियों द्वारा रची गयी कला को जन–जातीय कला कहा जाता है। जनजातीय कला जैसा कि नाम से स्पष्ट है जनसाधारण अथवा क्षेत्र विशेष, जाति विशेष, द्वारा विशेष विषय पर आधारित कार्य कौशल। जनजातीय कला में अधिकांशतः धार्मिक प्रतीकात्मक संस्कृति के दर्शन होते है। प्रमुखतया वनवासियों द्वारा अथवा अतिसाधारण जनजीवन जीने वाले समुदाय वर्ग द्वारा अपनाया गया कला कौशल जो कि पर्व/त्यौहार व ऋतु विशेष से सम्बन्धित होता है और वही समयान्तर में जनजातीय कला के रूप में जाना जाता है।

जनजातीय कला की जड़े मूलतः शहरी क्षेत्रों से दूर ग्रामीण वनवासियों अथवा कबीला संस्कृति से जुड़ी हुई है। इनकी अपनी ही एक संस्कृति, अपना समुदाय और अपने ही कानून व्यवस्थायें और नियम होते है। इनके जीवन में कम से कम आवश्यकतायें रहती है, जिसकी पूर्ति अधिकांशतः जंगलों की संपदा के उपयोग से हो जाती है। इन्हीं प्रवृतियों पर आधारित उनके उद्योग, कलात्मक उपकरण व कलात्मक वस्तुएँ व यंत्रों का विकास हुआ है। इनके रीति–रिवाज व परम्परायें भी इसी वातावरण की ही देन है। फलस्वरूप जाति विशेष द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली वस्तुओं जैसे– बर्तन, वस्त्रों, आभूषणों व अन्य काम में आने वाली वस्तुओं के साथ घरों की भित्तियों आंगन आदि को एक विशेष प्रकार से निर्मित व सज्जित किया जाता है। निर्माण व सृजन का वह कलात्मक स्वरूप परम्परागत पद्धति से पीढियों को भी हस्तान्तरित होता जाता है और वही कला के रूप में स्थापित हुआ है।

जनजातीय कला के वैश्विक उदाहरण मिलते है जिनमें चीन, स्पेन, उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, व भारत आदि देश प्रमुख है। दक्षिणी अफ्रीका के बाद सबसे ज्यादा जनजातियाँ वाले देश के रूप में भारत का नाम प्रमुख है। भारत में अधिकांश जनजातियॉ उत्तरी प्रदेशों जैसे– राजस्थान, आसाम, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, झारखण्ड, बिहार, महाराष्ट्र, गोवा एवं लक्षद्वीप में निवास करती है। भारत में मुख्यतया गोंड, संथाल, भील, लाहौल, साम्हौल, सहित तमाम छोटी बडी जनजातियाँ अपनी सांस्कृतिक विविधताओं के साथ पायी जाती है।

विश्व के विभिन्न प्रान्तों में पाई जाने वाली इन आदिवासी संस्कृतियो में मूलभूत एकता दिखाई देती है उदाहरण के लिए ज्यामितिक आलेखन और प्रकृति चित्रण।

सौन्दर्य और श्रृंगार की साज–सज्जा से लेकर रण–कौशल के युद्धाभ्यास तक और चित्रकारी शिल्पकला से लेकर कढाई–बुनाई की घरेलू कलाओं तक हर स्तर पर जनजातियों का यह समाज बेहद परिपक्व और सम्पन्न नजर आता है ।

''ई.आर.लीच.'' के अनुसार'' ''जनजातीय लोग कला की वस्तुओं का उपयोग धार्मिक उत्सवों निजी वस्तुओं की सजावट तथा मृत पूर्वजों की याद में स्मारक इत्यादि बनाने हेतु करते है।''

'मेलविकि', 'जैकब' तथा 'बर्नहर्ट जे.स्टर्न' ने अपनी पुस्तक 'जनरल एन्थ्रोपोलॉजी' में जनजातीय कला के निम्न तत्त्व बताये है–

1. चित्रकला एवं मूर्तिकला
2. संगीत तथा नृत्य
3. मौखिक साहित्य

वस्तुतः जनजातीय कला वैसे तो बहुत विस्तृत स्वरूप लिए हुए है किन्तु मुख्य रूप से इसके उदाहरण हम उपरोक्त तत्वों के आधार पर जान सकते है ।

1. चित्रकला एवं मूर्त्तिकला:–

आदिवासी लोगों द्वारा विभिन्न उत्सवों पर मांगलिक चिन्हों से एवं प्राकृतिक दृश्यों से घर, आंगन, भित्ति पर चित्रों का निर्माण किया जाता है । जैसे मध्यप्रदेश में निवास करने वाली 'गौंड़ जाति' द्वारा सम्पूर्ण घर आंगन को सुन्दरता से चित्रित किया जाता है । 'गौंड' एवं 'मूड़िया' जनजाति में लोागें द्वारा सिर पर 'सींग लगाने की प्रथा है जिसे अनेक प्रकार के चित्रों व रंगो से कौड़ियों से सजाया जाता है । साथ ही ये जातियां

गौंड जनजाति चित्रकला

अपने हथियारों को भी सज्जित करती है। इसी प्रकार 'टोडा जनजाति' मिट्टी के बर्तनों पर विभिन्न प्रकार की चित्रकारी करते है ।

पश्चिमी बंगाल क्षेत्र की 'संथाल' जनजाति में विवाह–डोली पर चित्रकारी व सजावट करने की परम्परा है । इसी प्रकार उड़ीसा के समुद्रतट के निकट रहने वाले 'गंजम' जनजाति के मछुआरे मृत व्यक्तियों की अत्यन्त सुन्दर कब्रे बनाते है जो कि चित्रकारी से भरपूर होती है ।

राजस्थान की भील आदिवासी जनजाति द्वारा विवाह आदि अवसरों पर भित्ति चित्र बनाने की परम्परा है । 'मोरिया' और 'खजूरी' इस अवसर के प्रमुख चित्र है । भील जनजाति की चित्रकला 'पिथौरा कला' के रूप में जानी जाती है। इसी प्रकार आकर्षक कंघा निर्माण कला का उदाहरण संथाल जाति, मडिया जाति, ज्वांग व कुकी जनजातियों में मिलता है ।

अफ्रीका में मिट्टी व लकड़ी के आकर्षक मुखौटा बनाने की परम्परा मिलती है अमेरिका में जादू टोना से

अफ्रीका जनजाति मुखौटा कला

जुड़ी 'नवाजों मृण चित्र' परम्परा मिलती है । इसके साथ ही कई प्रकार के मृण शिल्प बनाने के परम्परागत उदाहरण भी अन्य जनजातियों में मिले है ।

इसके अतिरिक्त अंग गोदना कला सभी जनजातियों में देखने को मिलती है जिसमें वे अपने हाथ, कमर, पीठ, पैर, गर्दन आदि शरीर पर नुकीली सुई से नामकरण व अन्य तंत्र मंत्र
से जुड़े चित्र बनवाते है ।

2. संगीत तथा नृत्य–

जनजातीय समाजों में संगीत तथा नृत्य का भी अत्यधिक महत्त्व रहा है जो जनजातीय जीवन के अभिन्न अंग है । अनेक धार्मिक एवं सामाजिक पर्वों के अवसरों पर जनजातीय स्त्री–पुरुष एवं बच्चे एकत्रित होते है

और संगीत व नृत्य का आयोजन किया जाता है ।

जिसमें 'थारू' जनजाति का 'थारू नृत्य' 'गौंड़' जनजाति का 'कर्मनृत्य', 'कोनयक नागाओं जनजाति में

आसाम का बिहू नृत्य

'युद्ध नृत्य', 'उराँव' जनजाति में 'पैकी नृत्य', 'खड़िया' जनजाति का 'शिकार–नृत्य' एवं 'आसाम' की जनजातियों का 'बिहू नृत्य' तथा मध्य प्रदेश की जनजातियों में 'बस्तर जनजाति' का नृत्य आदि उल्लेखनीय उदाहरण है

3. मौखिक साहित्य–

जनजातीय समाजों में कल्पनाओं एवं दंत कथाओं को नाटक के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है । समस्त लोग एक जगह समूह में एकत्रित हो जाते है तथा संगीत एवं नृत्य के साथ नाटक रूप से प्रकट किया जाता है । नाटक के साथ–साथ जनजातीय समाज में कहावतों व पहेलियों का भी प्रचलन है, जो कि इनकी सांस्कृतिक धरोहरों के रूप में मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है ।

वस्तुतः विश्व की सभी ललित कलाओं का मूल यही आदिम और आदिवासी कला है । जहां से कलाकार आज भी नवीन प्रेरणा लेता है । जनजातीय कलाएँ अत्यन्त विधिताओं से पूर्ण है चित्र, मूर्ति के साथ–साथ अनेक सुन्दर बुनाई, आभूषण निर्माण के भी अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते है । इन सभी में मूलभूत विशेषताएँ समान है जिन्हें हम इस प्रकार समझ सकते है :–

1. पौराणिकता और आनुष्ठानिक परम्परा युक्त
2. अंलकरण प्रधानता
3. सहजता और रीति–रिवाज आधारित
4. प्रकृति चित्रण एवं ज्यामितिक आकारों की अभिव्यक्ति

लोक कला – (Folk Art)

लोक–कला जन साधारण की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है। सभ्यता के विकास के क्रम में जहाँ एक ओर वह आदिम कला से जुड़ी रही है, वही दूसरी ओर सुसंस्कृत कला के मध्य स्थित रही है। इस कला को मुख्यतः ग्रामीण जनता से सम्बंधित किया जाता है, क्योंकि वस्तुतः इस कला को आगे बढाने का कार्य ग्रामीण जनता ने ही किया है। अतः सामान्यतः कला परम्पराओं के दो भेद रहे है–

1. लोक कला या निम्न धारा
2. शास्त्रीय कला या उच्च धारा

विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाएँ मूलतः ग्रामीण व कृषक वर्ग की थी। गांव के चारों ओर ही उनका जीवन घूमता रहता था इसी परिवेश में लोगों की कल्पना तथा दृष्टि का मुख्य स्वरूप निर्माण होता रहा। जाति, व्यवस्था में ही उनका जीवन परिचालक था। अधिकांश लोगों के जीवन का आधार आवश्यकता की पूर्त्ति करना था। ये लोग निरंकुश थे इनमें वृद्धि का अभाव था। ये लोग (ग्रामीण) गीतों, नुक्कड़–नाटकों, सामाजिक व धार्मिक उत्सवों प्राचीन पारपंरिक रीतियों का पालन करते हुए अपने सहज जीवन के क्रिया–कलापों की अभिव्यक्ति करते थे।

इस प्रकार की सहज अभिव्यक्ति से एक ऐसी संस्कृति व्यवस्थित होती चली गई जो अपनी आकाक्षांओं अपनी खुशियों को गीतों, शिल्पों व चित्रकारीके माध्यम से सहेजने लगी। धीरे–धीरे यह अभिव्यक्ति संस्कारगत वंशानुगत होती गई और लोक कला के स्वरूप में प्रकट होने लगी। चूंकि ये लोग निरक्षर थे इसलिए इनके नाटक, कविताएॅ व अन्य कलाएॅ लिपिगत नहीं हुई। किन्तु संगीत व चित्रकला की भाषा में अक्षरज्ञान का महत्व नहीं है इसलिए वह सदैव पल्लवित व विकसित होती है।

ये लोक कलाएँ बदलते समय व स्थितियों में स्वयं को समय से जोड़ती रही है। कभी–कभी लोक कलाएँ और जनजातीय कलाएँ एक रूप में स्वीकार की जाती है लेकिन दोनों में बहुत सूक्ष्म अन्तर है। आदिवासी कला या जनजातिय कला व्यक्ति विशेष अथवा जातिगत विशेषताओं के अधीन विकसित होती है किन्तु लोक कलाएँ मानव समूह की स्वीकृति है, ये लोक सापेक्ष होती है। उसमें निहित भावनायें किसी एक व्यक्ति सें सम्बधित न होकर समाज से सम्बधित होती है। लोक कलाएँ प्रमुख रूप से स्थानीय होती है। स्थानीय परम्पराओं की दृढता के कारण इस कला में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री भी प्रमुखतया स्थानीय व आचंलिक होती है।

लोक कला समूह की कला है जिसमे सारे समूह द्वारा किया गया सृजन भी एक समान विशेषताओं वाला अथवा एक सी प्रतीत रंग योजनाओं वाला होता है। लोक कला में मूलतत्व का सृजन प्रभावशील होता है। अतः इस प्रकार भारत के प्रत्येक प्रांत की अपनी एक निजी विशेषता है इन्हीं विभिन्नताओं में सृजन का विशेष गुण सबसे बड़ी समानता को व्यक्त करता है। भारत के प्रत्येक छोटे बड़े प्रांत की वैसे तो अनेकों लोक कलाएँ है लेकिन कुछ विश्वव्यापी पटल पर उभर कर प्रकट हुई है उनमें से प्रमुख लोक कलाएँ निम्न है ।

क्र.सं.	लोक कला का नाम	स्थान राज्य/क्षेत्र	प्रयुक्त साधन सामग्री	चित्र
1.	रंगोली	महाराष्ट्र	श्वेत, चमकदार पत्थर का चूर्ण कृत्रिम रंग सूखे रंग आदि ।	
2.	वरली चित्रांकन	महाराष्ट्र	नील, खड़िया, गेरू, मेहन्दी (हिना), पीली मिट्टी, (काजल) (काला)रंग, ईट का चूर्ण आदि ।	
3.	माण्डना	राजस्थान	हिरमिच (गेरू), खड़िया, चूना, रामरज(पीली मिट्टी), नील व अन्य गीले रंग ।	
4.	सांझी कला	उत्तर प्रदेश	स्थानीय मिट्टी, गोबर, चमकीले रंगीले कागज व पन्नियाँ आदि ।	
5.	फड़ चित्रांकन	भीलवाडा (राजस्थान)	पट्ट (कपड़ा),कागज व लकड़ी (काष्ठ) पर टेम्परा रंग, प्राकृतिक रंग व खनिज रंगों का प्रयोग ।	
6.	कलमकारी	आंध्र प्रदेश (द. भारत)	प्रमुखतः सूती वस्त्रों मुख्यतः कलम कपड़ा व रंग पर व सिल्क आदि पर कलम (बांस व खजूर के नुकीले ब्रश जानवर के बाल से तैयार) प्राकृतिक रंग एवं वर्तमान में एक्रलिक रंगो का प्रयोग ।	
7.	बंधेज	जोधपुर व जयपुर (राजस्थान)	सभी प्रकार के वस्त्र विभिन्न प्रकार से बांध कर (Tie and Dye) रंगो के घोल में डाल डिजाइन तैयार की जाती है	
8.	तंजौर चित्र	मैसूर (कर्नाटक)	सोने के पत्रों व कीमती व अर्द्धकीमती नग/नगीनों को उभार शिल्प में लगाकर रंग व आकार दिया जाता है	
9.	थेवा कला	प्रतापगढ़ (राजस्थान)	लाख,सोने, चांदी को औजारों से आकार देकर मुख्यतः बेल्जिअन कांच पर नक्काशी की जाती है ।	
10.	मधुबनी चित्र (मिथिला पेंटिग)	बिहार (मिथिला क्षेत्र)	कागज,कपड़े पर ब्रश, नुकीले पेन अथवा हाथ से प्राकृतिक व कृत्रिम सभी रंगों को प्रयुक्त कर सुन्दर अंलकरण	

क्र.सं.	लोक कला का नाम	स्थान राज्य/क्षेत्र	प्रयुक्त साधन सामग्री	चित्र
11.	अजरख प्रिंट	बाड़मेर (राजस्थान) एवं कच्छ (गुजराज)	मुख्यतः वनस्पति, व प्रकृतिक रंगों में लाल कत्थई व नीले रंगों को प्रयुक्त किया जाता है । सूती व सिल्क के वस्त्रों पर हाथ से लकडी के ठप्पों से छपाई होती है ।	
12.	सांगानेर प्रिंट	जयपुर (सांगानेर) राजस्थान	बेल–बूटों की छपाई जिसमें दाखा बेल प्रसिद्ध है । यह छपाई मुख्यतः नीले रंग को सफेद कपड़े पर किया जाता है ।	

इसके अतिरिक्त विभिन्न मांगलिक अवसरों पर भारत के लगभग सभी छोटे–बड़े प्रान्त में 'मेहंदी' एक लोकप्रिय कला है। ग्रामीण स्त्रियों द्वारा पनघट में जाते वक्त घड़े को सिर पर स्थिर रखने के लिए 'इडाणी' प्रयुक्त की जाती है जिसे भी बहुत आकर्षक स्वरूप में मोतियों, धागों से निर्मित किया जाता है। चित्र व शिल्प के साथ–साथ लोक गीत–संगीत व नृत्य भी लोक कलाओं की विशिष्ट पहचान है। उदाहरण के लिए 'घूमर', कालबेलियाँ व 'चंवरी' नृत्य राजस्थान के प्रसिद्ध लोक नृत्य है। इसी प्रकार 'गरबा', गुजरात का, 'लावणी' नृत्य महाराष्ट्र का एवं 'भांगड़ा; पंजाब का प्रसिद्ध है।

लोक कलाओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापकता लिए हुए है चित्र, मूर्ति व अन्य शिल्प कलाओं के साथ–साथ दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुओं जैसे– टोकरियाँ, दरियाँ गलीचे (नमदे) वस्त्रों व बर्तनों आदि के क्षेत्रों में भी लोक कलाएँ सिरमौर है।

बाल कला –(Child Art)

बाल कला से तात्पर्य वह कला जो बाल कलाकारों द्वारा किया गया चित्र कर्म अथवा अन्य कलात्मक अभिव्यक्ति है। जिसमें कि कोमल बाल मन में उठने वालें भावों की उसके आस–पास घटित होते संसार की सुन्दर सहज कलात्मक प्रस्तुति है, इसी को बाल कला (Children's art अथवा or the art of Children) कहा है।

'बाल कला' का शाब्दिक प्रयोग व व्याख्या आधुनिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन की खोज है। क्योंकि बाल मन सबसे कोमल, भावुक, अत्यन्त निर्दोष और पवित्र होता है। और बच्चों द्वारा की गई अभिव्यक्ति भी बड़े–बड़े चितंनशील मन को भी सहज आकर्षित कर देती है बच्चों का भोलापन कला के संयोग से अधिक विकसित और प्रस्फुटित होता है। अतः बड़े–बड़े विद्वानों और मनोवैज्ञानियों ने बाल कला को प्रत्येक बच्चे के लिए अत्यन्त उपयोगी माना है। उदाहरण के लिए चित्रकला में सुन्दर आड़ी तिरछी रेखाएँ, रंग–बिरंगे आकर्षक विभिन्न रूप बच्चों को बहुत प्रभावित करते है उससे उनका संवेदनशील बाल मन अधिक क्रियात्मक बनता है।

बाल कला के विभिन्न रूप

बाल कला का सबसे पहले प्रयोग पाश्चात्य विद्वानों ने किया है जिनमें 'फ्रेंक सिजेक (Fzanz-Cizek) का नाम प्रमुख है।

सिजेक ने बाल कला अभिव्यक्ति के निम्न सात चरण माने है –

1. अस्पष्ट व घसीटेदार चित्रांकन – (दो से पांच वर्ष की अवस्था तक)
(Scribbling and smearing)
2. हाथों द्वारा भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति (लगभग 4 वर्ष की अवस्था से आरम्भ)
(Rhythm of spirit and hand)
3. अमूर्त प्रतीकात्मक अंकन की अभिव्यक्ति (लगभग 6 वर्ष की अवस्था से आरम्भ)
(Abstract Symbolic stage)
4. विभिन्न आकारों का परिचय (7 से 8 वर्ष की अवस्था से आरम्भ)
(Introduction of types)
5. विभिन्न आकारों की विशेषताओं का प्रकटीककरण (9 से 10 वर्ष की अवस्था से)
(Introduction of characterstic)
6. विभिन्न रंगों, आकारों व अन्तराल विभाजन का विभक्तिकरण (11 से 14 वर्ष अवस्था से)
(Differentiation of colour, form and space)
7. आकारों की सही सामंजस्य पूर्ण अभिव्यक्ति (15 से 18 वर्ष की अवस्था)
(Pure Unity in forming and shaping)

कालान्तर में अनेक विद्वानों ने बाल कला पर अपने गहन अध्ययन प्रकाशित किये है। जिसके अतंर्गत बाल कला के मनुष्य के विकासशील अवस्था का प्रथम सोपान माना है और आदिम कलाकरों मानव की अभिव्यक्ति से जोड़ कर विस्तृत व्याख्याएँ दी है। संक्षेप में बाल कला एक ऐसी अभिव्यक्ति है जिसे वर्तमान आधुनिक कला और कलाकार द्वारा भी विशेष रूप से स्वीकारा गया है। प्रसिद्ध आधुनिक कलाकार 'पिकासों' ने कहा है कि 'प्रत्येक बालक एक कलाकार है (Every Child is an Artist)एक अन्य अध्ययन से यह भी कुछ विद्वान मानते है कि बालक रेखांकन में रूचि रखते है और बालिकाएँ अलंकरणात्मक चित्रण में अधिक रूचि लेती है। एक अन्य अमेरिकन अध्ययन के अनुसार बालिकाएं बालकों की अपेक्षा चित्र निर्माण के प्रति अधिक

रूचि लेती है। सारांशतः कलाएँ बाल विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान में लगभग सभी विद्यालयों में चित्रकला (Art and Craft) की प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती है।

वर्तमान आधुनिक कला में कई कलाकार यह मानते है कि उनकी कला में 'बाल कला' के अंर्तदर्शन होते है। अर्थात् बालस्वरूप अभिव्यक्ति आज आधुनिक समकालीनकला में एक विशिष्ट शैली स्वरूप प्रकट होती है। 'अमूर्त कला' इसका एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। अमूर्त कला अर्थात् जिसमें विषय व आकार गौण अथवा नहीं होते बल्कि रंगों, रेखाओं व तानों का अद्भूत सामंजस्य चित्र के सौर्न्दयात्मक पक्ष को एवं भावों की अभिव्यक्ति का प्रकटीकरण है।

साराशंतः 'बाल कला' सिर्फ बालकों की सहज अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि बाल मन के मनाभावों और उस पर पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक दानों पक्षों को उजागर करने का सशक्त माध्यम है। साथ ही आधुनिक कला और कलाकारों द्वारा भी अपनी कला में विशेष स्थान दिया है।

शास्त्रीय कला (Classical Art)

कला अभिव्यक्ति की सर्वोत्तम परिणति अर्थात् सर्वश्रेष्ठ स्वरूप शास्त्रीय कला है। शास्त्र.ीय कला निश्चित सिद्धान्तों व निश्चित नियमों पर आधारित होती है। अतः इन नियमों व सिद्धान्तों की जानकारी एक कलाकार के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है।

प्राचीन आदिम कला में से ही एक ओर लोक कला तथा दूसरी ओर शास्त्रीय अथवा सुसंस्कृत कला का विकास हुआ है। कला का यह स्वरूप समाज की विकसित अवस्था से सम्बन्धित है। जैसे–जैसे व्यक्ति और समाज की उत्ततरोत्तर उन्नति होती गई वैसे–वैसे कला अधिकाधिक बौद्धिक व जटिल बनने लगी। इसी को शास्त्रीय व सुसंस्कृत कला कहा जाता है।

शास्त्रीय कला वस्तुतः व्यक्तिनिष्ठ होती है। कलाकार स्वांतः सुखाय के लिए इस कला का निर्माण करता है जो कि कलाकार के गंभीर चिंतन–मनन का परिणाम होती है। शास्त्रीय कलाएँ जिन निश्चित विधियों व शैलियों पर आधारित होती है, उनमें कलाकार को तकनीकी रूप से दक्ष व निपुण होना आवश्यक होता है। अतः इस कला में सतत् अभ्यास के बिना चित्र के शैलीगत गुणों का विकास असंभव होता है। शास्त्रीय कला चूंकि शास्त्रीय नियमों से बंधी होती है और इन नियमों में कलाकार अपनी ओर से कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। अब प्रश्न उठता है कि ये नियम क्या है?और इनका निमार्ण कब व किसने किया? वस्तुतः मानव विकास की सुन्दरतम् उपलब्धि 'कला' है। जैसे–जैसे सभ्यता विकसित हुई मानव जीवन परिष्कृत व सुसंस्कृत होता गया। तब वैदिक, पौराणिक उपनिषद् व कालान्तर में बड़े–बड़े साहित्य व शास्त्र लिखे गये और इनमें एक श्रेष्ठ नैतिक आदर्श जीवन का अभिन्न अंग 'कला' को स्वीकारा गया। कला की विस्तृत व्याख्या एवं नियम–उपनियम से सम्बधित अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। और यही नियम व सिद्धान्त शास्त्रीय कलाओं के आधार स्तम्भ है। जिन भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों में चित्र–कर्म व शिल्पकला पर विशेष रूप से विचार किया गया है। उन ग्रंथों में भारतीय चित्रकला की प्राचीन समृद्धि का सहज ही परिचय मिलता है। उन ग्रंथों में 'चित्रसूत्र', 'चित्र–लक्षण', 'शिल्पशास्त्र', 'विष्णुधर्मोत्तर–पुराण', 'नाट्यशास्त्र' व 'कामसूत्र' आदि प्रमुख है।

प्रथम शताब्दी में 'वात्स्यायन द्वारा रचित 'काम–सूत्र' के चतुर्थ अध्याय 'आलेख्य' में चित्र के षडंगों

पर प्रकाश डाला गया है ये है – रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य–योजना, सादृश्य व वर्णिका भंग । षडंग के आधार पर बने भारतीय चित्रों का अत्युत्तम शास्त्रीय स्वरूप अजंता (महाराष्ट्र) के गुफाओं में बने भित्ति–चित्र हैं, जिसकी गुफा सं. 1 का चित्र 'बोधिसत्व पद्मपाणि' इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

इसी प्रकार 'भरतमुनि' द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' में नृत्य व नाटक की कलाओं की विस्तार से व्याख्या की गई है। आगे चलकर लघु चित्र शैलियों जैसे– राजस्थानी, पहाड़ी व मुगल आदि में भी इन्हीं शास्त्रीय नियमों के दर्शन होते है।

भारत के समान चीन में भी चीनी चित्रकला का आधार स्तम्भ 4–5 वीं शताब्दी में 'शी–हो' द्वारा रचित चीनी कला के षड़ंग है।

'बोधिसत्व पद्मपाणि', गुफा सं.–1 अंजता

इसी प्रकार पश्चिमी कला में यूरोप में 'यूनानी कला' (Greece Art) भी शास्त्रीय कला के नियमों पर आधारित रही है। उसे भी यूरोप में शास्त्रीय कला के रूप में उच्च स्थान मिलता है। कालान्तर में पश्चिमी कला में 14–15वीं शताब्दी का काल 'पुनर्नजागरणकला' के रूप में विख्यात है, इस काल में नवीन शास्त्रीय नियमों के आधार पर चित्रों व मूर्त्तियों की रचनाएँ हुई जो कि विश्व के उल्लेखनीय उदाहरणों में से एक है। इस काल के सर्वश्रेष्ठ कलाकार'लियोनार्दो–दा–विंसी' 'माइकल–एंजिलों' व 'राफेल' है।

'मोनालिसा'– लियोनार्दो–दा–विंसी

इस प्रकार विश्व में समय–समय पर विभिन्न कला शैलियाँ नियमों व सिद्धान्तों के आधार पर विकसित हुई है जो कि 'शास्त्रीय कला' के रूप में जानी जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. असम की जनजाति का प्रमुख नृत्य कौनसा है?
   (अ) थारू (ब) पैकी (स) कर्म (द) बिहू
2. राजस्थान का कौनसा प्रदेश फड़ कला के लिए प्रसिद्ध है?
   (अ) जोधपुर (ब) बीकानेर (स) भीलवाड़ा (द) जयपुर।
3. 'बालकला' किससे सम्बंधित है?
   (अ) बालकों से (ब) संस्कृत से (स) विज्ञान से (द) गणित से
4. भारत की प्रसिद्ध शास्त्रीय कला कौनसी है?
   (अ) पटना शैली (ब) अजन्ता शैली
   (स) लखनऊ शैली (द) मद्रास शैली
5. बंगाल शैली के प्रमुख अग्रणी कलाकार कौन है?
   (अ) अवनीनन्द्रनाथ टैगौर (ब) मकबूल फिदा हुसैन
   (स) अमृता शेरगिल (द) एन.एस. बैन्द्रे

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गौंड जाति की प्रमुख कला कौनसी है?
2. सांझी कला का स्थान क्षेत्र कौनसा है?
3. बाल कला के 'सिजेक' विद्वान ने कितने चरण माने है?
4. अजन्ता का प्रसिद्ध भित्ति चित्र 'बोधिसत्व पद्मपाणि' कौनसी गुफा में बना है?
5. भारत में आधुनिक कला आंदोलन की शुरूआत कहाँ हुई?

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

1. राजस्थान क्षेत्र किन्ही दों प्रमुख जनजातीय कलाओं के उदाहरण दीजिए।
2. रंगोली निर्माण में प्रयुक्त की जाने वाली प्रमुख सामग्री कौनसी है?
3. बाल कला के लिए आधुनिक कलाकार 'पिकासो' ने क्या लिखा है?
4. भारतीय कला के षडंगों के नाम क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. जनजातीय कलाओं के प्रमुख तत्व क्या है?विस्तार से लिखिए ।
2. लोक कलाओं पर लेख लिखिए ।
3. बालकला की महत्ता विस्तार पूर्वक समझाइएं।
4. शास्त्रीय कलाएँ क्या है?उदाहरणपूर्वक समझाए।
5. आधुनिक कला से क्या तात्पर्य है?विस्तार से लिखिए।

उत्तरमाला बहुचयनात्मक प्रश्न

1 (द) 2 (स) 3. (अ) 4 (ब) 5. (अ)

सांगीतिक परिभाषाएं

1. सैद्धांतिक पक्ष

अलंकार

अलंकार का शाब्दिक अर्थ है 'आभूषण' या गहना। श्रृंगारिक वस्तुओं के रूप में जिस तरह आभूषण या गहने शरीर के सौंदर्य बढाने में सहायक होते हैं, ठीक उसी प्रकार संगीत के दृष्टिकोण से देखा जाये तो अलंकार सांगीतिक सौंदर्य का निर्माण करने अथवा उसे और अधिक बढ़ाने में सक्षम होते हैं। 'संगीत अलंकार' नामक ग्रन्थ में कहा गया है– "विशिष्ट वर्ण सन्दर्भ अलकांर प्रचक्षते" अर्थात नियमित वर्ण समूह को अलंकार कहते हैं।

संगीत के क्षेत्र मे अलंकारो का अत्यधिक महत्व है। सांगीतिक दृष्टिकोण से अलंकार को समझने के लिये इसका अन्य प्रचलित नाम 'पलटा' से आसानी से समझा जा सकता है। अलंकार को 'पलटा' भी कहते है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है– स्वरों को उलट–पलट कर विभिन्न स्वर समुदाय बनाया जाये तो उसे 'पलटा' कहा जायेगा। कुल सात स्वर सा, रे, ग, म, प, ध, नि को भाँति–भाँति प्रकार के स्वर समुदाय से नियमानसुार क्रमबद्धता रखते हुए पलटों या अलंकारों की रचना की जा सकती है।

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि संगीत की प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण कर रहे विद्यार्थियों को इन अलंकारों का अभ्यास अवश्य करना चाहिये ताकि इन्हें स्वरों का अच्छा ज्ञान हो सके, साथ ही इन स्वरों के मध्य कितना अन्तराल है उसका भी प्रयोगात्मक रूप से गाकर अथवा बजाकर ज्ञान हो सके। इन अलंकारो का अभ्यास संगीत के प्रत्येक विद्यार्थी चाहे वह मंच प्रदर्शन करने वाला कलाकर, गायक हो अथवा वादक, सभी को भाँति–भाँति के नवीन स्वर–समुदाय बनाकर हमेशा ही करते रहना चाहिये। प्रारम्भिक अवस्था में स्वर के उच्चारण के साथ, तत्पश्चात् इन्हीं अलंकारों को 'आकार' में आ का उच्चारण करने से स्वर ज्ञान के साथ–साथ गले की भी अच्छी तैयारी की जा सकती है। इसी प्रकार वादक कलाकार भी इनके अभ्यास से विभिन्न प्रकार से अपनी उंगलियों को वाद्य पर घुमाने की योग्यता हासिल कर सकता है।

अलंकारों की रचना में एक निश्चित क्रमबद्धता होती है, जो कि इसके आरोही और अवरोही दोनों ही क्रमों में पाई जाती है। यहाँ पर उदाहरणार्थ कुछ प्रारम्भिक अलंकार दिये जा रहे हैं जिनमें इस क्रमबद्धता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अलंकारों का अभ्यास पहले शुद्ध स्वरों के साथ फिर स्वरों के विभिन्न कोमल एवं तीव्र प्रकारों का प्रयोग करके किया जा सकता है:–

1. सा रे ग म प ध नि सां

   सां नि ध व म ग रे सा।

2. सासा रेरे गग मम पप धध निनि सांसां

सांसां निनि धध पप मम गग रेरे सासा।

3. सासासा रेरेरे गगग ममम पपप धधध निनिनि सांसांसां
सांसांसां निनिनि धधध पपप ममम गगग रेरेरे सासासा।

4. सारे रेग गम मप पध धनि निसां
सांनि निध धप पम मग गरे रेसा।

5. सारेग रेगम गमप मपध पधनि धनिसां
सांनिध निधप धपम पमग मगरे सरेसा।

6. सारेगम रगेमप गमपध मपधनि पधनिसां
सांनिधप निधपम धपमग पमगरे मगरेसा।

7. सारेसा रेगरे गमग मपम पधप धनिध निसांनि सांरेसां
सांरेसां निसांनि धनिध पधप मपम गमग रेगरे सारेसा।

8. साग रेम गप मध पनि धसां
सांध निप धम पग मरे गसा।

9. सासागग रेरेमम गगपप ममधध पपनिनि धधसांसां
सांसांधध निनिपप धधमम पपगग ममरेरे गगसासा।

10. साम रेप गध मनि पसां
सांप निम धग परे मसा।

राग:—

''रंजयते इति रागः'' अर्थात जिसमें रंजकता हो, वह राग है। अभिनव रांग मंजरी में लिखा है —

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रंजकौ जनचित्तानां स रागः कथितौ बुधः।।

अर्थात बुद्धिमान लोगों के अनसुार राग ध्वनि की वह विशिष्ट रचना है, जिसमें स्वर एवं वर्णों के कारण सौदंर्य हो तथा जो मनुष्य के चित्त या मन को आनन्दित अर्थात प्रसन्न करे।

राग की कुछ प्रमुख विशेषताएं यहाँ उल्लेखनीय हैं—

1 सर्वप्रथम राग में रंजकता अर्थात सुन्दरता होना चाहिये।

2 राग को किसी ना किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिये।

3 राग, स्वर तथा वर्ण युक्त हों।

4 राग में कम से कम पाँच स्वरों का होना आवश्यक है।

5 राग ललित, केदार, बिहाग जैसी अपवाद स्वरूप रागों के अतिरिक्त एक राग में एक ही स्वर के दो रूप शुद्ध एवं विकृत पास—पास नहीं आ सकते हैं, जैसे— <u>रे</u> रे, मं ....इत्यादि।

6 षड़ज अर्थात सा को किसी भी राग में वर्जित नहीं माना जा सकता है तथा साथ ही साथ किसी भी राग में मध्यम (म) अथवा पंचम (प) दोनों ही स्वर एक साथ वर्जित नहीं हो सकते हैं। किसी एक स्वर का होना

अनिवार्य है।

7 राग में लगने वाले प्रमुख स्वर वादी तथा इसके बाद बहुतायत से प्रयोग होने वाले स्वर संवादी का होना आवश्यक है। इन स्वरों के आधार पर ही राग की पहचान होती है।

राग में लगने वाले स्वरों की संख्या के आधार पर उस राग की जाति का निर्धारण किया जाता है। जिस राग में सातों स्वरों का प्रयोग होता है उसे संपूर्ण जाति का राग, जिस राग में छह स्वरों का प्रयोग होता है उसे षाड़व जाति का राग तथा जिस राग में पाँच स्वरों का प्रयोग होता है उसे ओड़व जाति का राग कहते हैं। इस तरह से मुख्य रूप से तीन जातियाँ मानी गई हैं। यहाँ पर एक तथ्य उल्लेखनीय है कि किसी भी राग में 'सा' वर्जित नहीं होता है। शेष छह स्वरों में से ही किसी एक अथवा दो स्वरों को वर्जित किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप सम्पूर्ण जाति की राग में यमन, भैरव, काफी ,षाड्व जाति की राग में मारवा, सोहनी, पूरिया तथा औड़व जाति की राग में भूपाली, दुर्गा, देशकार इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं। इन तीन मुख्य जातियों की नौ उप जातियाँ होती हैं, जिन्हें निम्न सारणी के आसानी से समझा जा सकता है:–

आरोह में स्वरो की संख्या	**अवरोह में स्वरो की संख्या**	**राग जाति**
सात	सात	सम्पूर्ण–सम्पूर्ण
सात	छह	सम्पूर्ण–षाड़व
सात	पाँच	सम्पूर्ण–औड़व
छह	सात	षाड़व–सम्पूर्ण
छह	छह	षाड़व–षाड़व
छह	पाँच	षाड़व–औड़व
पाँच	सात	औड़व–सम्पूर्ण
पाँच	छह	औड़व–षाड़व
पाँच	पाँच	औड़व–औड़व

थाटः–

थाट अथवा ठाठ स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिसके आधार पर रागों की रचना की गई है। थाटों को अगर रागो का जन्मदाता कहें तो ग़लत नहीं होगा। सात शुद्ध स्वर और पाँच विकृत (कोमल व तीव्र) मिलाकर कुल बारह स्वर माने गये हैं। इन्हीं बारह स्वरों के विभिन्न चयनित समूहों के आधार पर थाटों की रचना की गई है। थाटों के निर्माण में निम्नलिखित नियमों का होना आवश्यक है–

1 थाट कुल बारह स्वरों में से केवल सात स्वरों के आधार पर ही तैयार किये जाते हैं।

2 थाट में सातों स्वरों का क्रमश होना आवश्यक है अर्थात सा के बाद रे, रे के बाद ग इत्यादि। सात सेकम स्वरों के आधार पर थाट की रचना नहीं हो सकती।

3 सौंदर्य थाट का आवश्यक गुण नहीं है, यह तो राग निर्माण का साधन है।

4 आरोहात्मक स्वरों के द्वारा ही थाट का निर्माण होता है। इसमें अवरोहात्मक स्वरों की आवश्यकता नहीं होती है।

5 थाट का नामकरण उससे उत्पन्न हुए प्रसिद्ध राग के आधार पर कर लिया जाता हैं, जैसे काफी राग जिस थाट से उत्पन्न हुआ उसे काफी थाट, भैरव राग जिस थाट से उत्पन्न हुआ उसे भैरव इत्यादि।

वर्तमान समय में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा रचित दस थाटों का ही प्रचलन है, जिनके आधार पर हिन्दुस्तानी रागों की उत्पत्ति मानी जाती है। इन थाटों का नाम और उसमें लगने वाले स्वर निम्नानुसार है –

1 **थाट बिलावलः–** इस थाट में सातों स्वर शुद्ध लगते हैं–
सा रे ग म प ध नि सां।

2 **थाट कल्याणः–** इस थाट में तीव्र मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैंः–
सा रे ग म॑ प ध नि सां।

3 **थाट खमाजः–** इस थाट में कोमल निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैः–
सा रे ग म प ध नि॒ सां ।

4 **थाट भैरवः–** इस थाट में कोमल रिषभ तथा धैवत के अतिरिक्त शेष स्वर शुद्ध लगते हैं :–
सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां।

5 **थाट पूर्वीः–** इस थाट में कोमल रिषभ तथा धैवत, तीव्र मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं :–
सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां।

6 **थाट मारवाः–** इस थाट में कोमल रिषभ, तीव्र मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध हैं :–
सा रे॒ ग म॑ प ध नि सां।

7 **थाट काफीः–** इस थाट में गांधार व निषाद कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध हैं :–
सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां।

8 **थाट आसावरीः–** इस थाट में गांधार, धैवत व निषाद कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैंः–
सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒ सां।

9 **थाट भैरवीः–** इस थाट में रिषभ, गांधार, धैवत व निषाद कोमल तथा मध्यम शुद्ध लगता हैः–
सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां।

10 **थाट तोडीः–** इस थाट में रिषभ, गांधार, धैवत कोमल मध्यम तीव्र लगता है। शुद्ध स्वर केवल निषाद हैः–
सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि सां।

लयः–

लय का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक अहम योगदान है। साँसों के आने जाने श्वांस, प्रश्वांस में लय, चाल में लय, दौड़ में लय, किसी वाहन को चलाने में लय इत्यादि के रूप मे इसे जीवन के हर मोड़ पर देखा जा सकता है। लय का ही दूसरा नाम गति भी है।

सांगीतिक दृष्टिकोण से भी लय का अत्याधिक महत्व है। चाहे गायन–वादन हो अथवा नृत्य, संगीत की कोई विधा, लय के बिना अपूर्ण है। एक समान चाल को लय कहा जाता है। लय मुख्यतः तीन प्रकार की

होती है–

1– विलंबित लय

2– मध्य लय

3– द्रुत लय

शाब्दिक रूप से भी इसे समझना आसान है। जो लय धीमी गति की हो वह विलंबित, जो लय धीमी हो ना तेज गति की हो उसे मध्य और जो लय तेज गति की हो उसे द्रुत लय कहा जायेगा। लय के उपरोक्त प्रकारों को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है– मान लीजिये कोई गायन अथवा वादन की बंदिश एक मिनट अर्थात् साठ सैकण्ड में पूर्ण हुई और इसे मध्य लय माना जाये, अगर यही बंदिश दो मिनट या एक सौ बीस सैकण्ड में, अर्थात दुगुने समय में पूर्ण की जाये तो उसे विलंबित लय कहेंगे, अगर यही बंदिश आधा मिनट या तीस सैकण्ड में पूर्ण की जाये तो उसे द्रुत लय कहा जायेगा ।

उदाहरण स्वरूप यहाँ गीत की एक बंदिश की प्रथम पंक्ति दी जा रही है जिसे हम मान लेते है कि इसे गाने का कुल समय सोलह सेकण्ड है। अगर यह पंक्ति सोलह सैकण्ड में गाई गई तो इसे मध्य लय कहा जायेगा–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
इ	त	नो	जो	ब	न	प	र	मा	ऽ	न	न	क	रि	ये	ऽ
0				3				x				2			

अगर इसी पंक्ति को सोलह सैकण्ड के स्थान पर बत्तीस सैकण्ड में गाया जाता है तो यह विलंबित लय कहलायेगी, जैसेः–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
इ	ऽ	त	ऽ	नो	ऽ	जो	ऽ	ब	ऽ	न	ऽ	प	ऽ	र	ऽ
0				3				x				2			
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
मा	ऽ	ऽ	ऽ	न	ऽ	न	ऽ	क	ऽ	रि	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ
0				3				x				2			

पुनः अगर इसी पंक्ति को सोलह सैकण्ड के स्थान पर आठ सैकण्ड में पूर्ण किया जाये तो यह द्रुत लय कहलायेगी–

1	2	3	4	5	6	7	8
इत	नोजो	बन	पर	माऽ	नन	करि	येऽ
0				3			
9	10	11	12	13	14	15	16
इत	नोजो	बन	पर	माऽ	नन	करि	येऽ
x				2			

ताल :–

ताल शब्द की रचना 'तल्' धातु से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है – प्रतिष्ठा अथवा स्थिरता। ताल वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा गायन–वादन अथवा नृत्य की क्रिया को नापा जाता है। यह क्रिया कितने समय में पूर्ण होगी, उस समय के आधार पर उतनी मात्राओं को लेते हुए ताल की रचना की गई।

ताल को संगीत का प्राण भी कहा जाता है, संगीत रूपी इमारत इसी ताल रूपी नींव पर खड़ी हुई है। विभिन्न मात्राओं की संख्या के आधार पर तालों की रचना हुई है, उदाहरणार्थः– छह मात्रा की दादरा ताल, सात मात्रा की रूपक, आठ मात्रा की कहरवा, दस मात्रा की झपताल, बारह मात्रा की एकताल, सोलह मात्रा की तीनताल अथवा त्रिताल इत्यादि।

गायन शैलियों का परिचय

सरगम गीत

संगीत विषय की प्रारम्भिक कक्षा के विद्यार्थियों हेतु सरगम गीत का प्रयोग किया जाता है। राग स्वरूप के सम्यक दिग्दर्शन हेतु इसकी भूमिका सर्वमान्य है। इस गीत प्रकार में काव्य पक्ष नही होता है, अपितु राग नियमों में बाँधकर सरगम के आधार पर ज्यादातर तीन ताल में इसकी रचना की जाती है।

हिन्दुस्तानी संगीत की गायन शैलियों के रूप में सरगम गीत का वैसे कोई विशिष्ट स्थान तो नहीं है परन्तु किसी राग के प्रारम्भिक ज्ञान और स्वराभ्यास साधन के रूप में इसका अपना महत्व है।

ख़्याल

'ख़्याल' मूलतः फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है 'विचार' अथवा 'कल्पना'। किसी राग विशेष के बारे में विचार कर अपनी कल्पना शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रस्तुत राग के विशिष्ट नियमों का पालन कर राग को प्रस्तुत करना ख़्याल गायन शैली की प्रमुख विशेषता है। गायक की यह कल्पना शक्ति गीत की बंदिश के साथ ही साथ आलाप, तान, बोल–आलाप, बोल–तान जैसी प्रक्रियाओं में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

ख़्याल गायन शैली से पूर्व भारतीय शास्त्रीय संगीत के रूप में ध्रुवपद गायकी का ही प्रचार था, किन्तु मुसलमान शासकों की संस्कृति का भारतवर्ष में प्रभाव पड़ने से ख्याल गायन शैली भी प्रचलित हुई जो कि वर्तमान समय तक भी व्यापक रूप से प्रचार में है। ध्रुवपद गायकों के अधिकतर शब्द संस्कृत के होते थे जो कि तत्कालीन मुसलमान शासकों की भाषा व संस्कृति से भिन्न थे, इस कारण से इस गायकी को उतना शासकीय प्रश्रैय नहीं मिला। मुसलमानों के मध्य प्रचलित 'कव्वाली' गायन शैली तथा भारतीय संगीत के प्रचलित गीत प्रकारों के सम्मिश्रण से 'ख़्याल' गायन शैली का जन्म हुआ। इसकी भाषा व वर्ण विषय का मुस्लिम शासकों के रीति–रिवाजों और संस्कृति से मेल होने के कारण इस गायकी को इन शासकों का प्रश्रैय मिला, जिस कारण से यह गायन शैली प्रचलित होती चली गई।

तेरहवीं शताब्दी में अमीर ख़ुसरो जो कि अलाउद्दीन ख़िलजी के शासन काल में थे, उनके द्वारा भी कव्वाली गीतों की रचना कर उस समय में प्रचलित रागों में उसे निबद्ध किया जिसे कव्वाली ख़्याल की संज्ञा दी गई। इसी प्रकार अठारहवीं शताब्दी में मुगल शासक मोहम्मद शाह के दरबारी गायक सदारंग व अदारंग ने भी अनेकों ख़्यालों की रचना की। इनके द्वारा रचित ख़्याल की बंदिशों में इन रचनाकारों के नाम के साथ–साथ मोहम्मद शाह का नाम भी उल्लेखित किया हुआ है। यथा–सदारंगीले मोहम्मद शाह। इन ख़्यालों की भाषा में अवधि, हिन्दी एवं उर्दू के शब्दों का मिश्रण था। कव्वाली ख़्याल के विकसित रूप को ही आज के समय में प्रचलित छोटे ख़्याल गायन शैली के रूप में देखा जा सकता है।

ख़्याल गायन शैली का छोटे ख़्याल के अलावा एक और प्रकार होता है जिसकी रचना भी सदारंग व अदारंग के द्वारा की गई है, जिसे कव्वाली ख्याल अथवा बड़ा ख़्याल कहते हैं। बड़ा ख्याल धीमी अर्थात् विलम्बित लय में गाया जाता है तथा छोटे ख़्याल मध्य अथवा द्रुत लय में गाये जाते हैं। ख़्याल गायकी को प्रायः एकताल, त्रिताल, तिलवाड़ा, झूमरा, झपताल, रूपक इत्यादि तालों में गाया जाता हैं। दोनों ही प्रकार के ख़्यालों में गायक को अपनी कल्पना शक्ति से परन्तु राग नियमों का पालन करते हुए आलाप–तान इत्यादि सौंदर्यवर्धक प्रक्रियाओं से राग विस्तार की छूट प्रदान की गई है।

प्रारम्भ में गायक बड़े ख़्याल की प्रस्तुति करता है तत्पश्चात् छोटे ख़्याल की प्रस्तुति दी जाती है। दोनों ही ख़्यालों की पद रचना एक दूसरे से भिन्न होती है। वर्तमान समय में ख़्याल गायन शैली के विभिन्न घराने प्रचार में हैं, जिनकी अपनी तरह की विशेषता है। प्रमुख रूप से प्रचलित घरानों में ग्वालियर घराना, आगरा घराना, पटियाला घराना, जयपुर घराना, किराना घराना इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। प्रमुख ख्याल गायकों जैसे– पं. भीमसेन जोशी, पं. जसराज, उ. अमीर खाँ, उ. बड़े गुलाम अली खाँ, विदुषी किशोरी अमोनकर, पं. राजन व साजन मिश्र इत्यादि ने इस गायन शैली को अपनी एक अलग पहचान दिलवाई है। इसके अतिरिक्त ख्याल गायन शैली के प्रचार प्रसार में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे का भी एक अहम् योगदान है, जिन्होंनें विभिन्न घरानों में प्रचलित ख़्याल की बंदिशों का संकलन कर लिपिबद्ध किया। इस ग्रन्थ को क्रमिक पुस्तक मालिका के नाम से जाना जाता है। इस ग्रन्थ के विभिन्न भागों में सदारंग, अदारंग, मनरंग इत्यादि द्वारा रचित तथा उपरोक्त घरानों में प्रचलित बड़े एवं छोटे ख़्याल की बंदिशों को स्वरलिपि सहित दिया गया है, जो कि वर्तमान समय में काफी प्रचार में हैं।

तराना

तराना गायन शैली लगभग ख़्याल गायन के समान ही है। अन्तर मूलतः बंदिश में निहित शब्दों का है। जहाँ ख़्याल में अर्थपूर्ण शब्द एवं बंदिशों का समावेश होता है वहीं तराना गायकी में कुछ निरर्थक शब्द जैसे तारे, दानि, ओदानि, यललि, दीम, तदीम इत्यादि का प्रयोग किया जाता हैं। इन शब्दों के प्रयोग के सन्दर्भ में यह धारणा प्रचलित है कि फ़ारसी विद्वान अमीर ख़ुसरो जब हिन्दुस्तान आये तो उन्हे यहाँ का शास्त्रीय गायन काफी पसंद आया, किन्तु तत्कालिक गायन शैली में संस्कृत जैसी क्लिष्ट भाषा होने के कारण बंदिशो के अर्थ को वे समझ नहीं पाते थे। इस कारण उन्होंने कुछ निरर्थक शब्दों के आधार पर ऐसी बंदिशों की रचना की और हिन्दुस्तानी रागों को उन शब्दों में बाँधकर गाया। उनकी यही रचना 'तराना' गायन शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई। कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि तराना में प्रयुक्त शब्द निरर्थक नहीं है तथा उन अक्षरों में ईश्वर के संक्षिप्त नाम का उल्लेख एवं स्तुति भी है। मान्यताऐं चाहे जो भी हो, यह तो निश्चित है कि

तराना गायन शैली को वर्तमान समय तक भी हिन्दुस्तानी गायन शैलियों में विशिष्ट एवं प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है।

तराना ज्यादातर मध्य लय से प्रारम्भ होकर अति द्रुत लय तक गाये जाते हैं। तराने के शब्दों को संयुक्त कर स्वर और लय के माध्यम से वैचित्र्यपूर्ण प्रदर्शन इसकी विशेषता है। तराने ज्यादातर तीनताल व एकताल में गाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ तरानें रूपक, झपताल, आड़ा चौताल जैसी तालों में भी सुने जा सकते हैं। तराना गायन शैली को ज्यादातर ख़्याल गायक ही गाते हैं। ख़्याल गायकी की तरह इसमें भी स्थाई और अन्तरा दो भाग होते हैं तथा विभिन्न लयकारी के साथ द्रुत तानों का प्रयोग किया जाता है।

भजन

प्राचीन समय से ही भारतवर्ष में भजनों का प्रचलन है। भक्ति–भाव से ओतप्रोत पदों की स्वर–ताल लिपिबद्ध रचना को भजन कहते हैं। ईश्वर आराधना, उनकी विभिन्न लीलायें और ईश्वर की महिमा मंडन इन पदों की मुख्य वर्ण विशिष्टता है।

जन मानस में वही भजन ज्यादा प्रचलित होते हैं जिनमें शब्दों की सरलता, भावपूर्णता के साथ उसकी स्वर रचना भी सहज व सरल हो। मीरा, सूरदास, कबीर, रैदास, तुलसीदास इत्यादि सन्तों द्वारा रचित पदों के आधार पर गाये जाने वाले भजनों के अतिरिक्त पारम्परिक रूप से गाये जाने वाले अथवा स्थानीय रचनाकारों द्वारा रचित भजनों का भी समाज में प्रचलन है।

भजनों में प्रयुक्त होने वाली भाषा हिन्दी के अतिरिक्त बृज, अवधी जैसी आंचलिक भाषाऐं भी होती है। भजन किसी शास्त्रीय राग अथवा मिश्र राग पर भी आधारित हो सकते हैं अथवा जनसामान्य में प्रचलित लोकधुनों पर भी आधारित हो सकते हैं। भजनों में प्रायः कहरवा, रूपक, दादरा, धुमाली एव तीव्रा ताल इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

प्रसिद्ध भजन गायकों में हरिओम शरण, पुरूषोत्तम दास जलोटा, अनूप जलोटा, शर्मा बन्धु, सिंह बन्धु इत्यादि का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

ग़ज़ल

उर्दू साहित्य के प्रचार प्रसार में ग़ज़ल गायकी का अहम योगदान है। मूलतः ग़ज़लों में उर्दू एव फ़ारसी भाषा के शब्दों का ही प्रयोग होता आया है परन्तु आधुनिक समय में हिन्दी भाषा की ग़ज़लों का भी प्रचार बढ़ा है। ग़ज़लों का मुख्य वर्ण विषय श्रृंगार रस प्रधान होता है, जिसमें प्रेमी–प्रेमिका के परस्पर मिलन, वियोग, शिकायत, उलाहना जैसे भावों की प्रधानता होती है।

ग़ज़लों में शेरो–शायरी का संग्रह होता है। ग़ज़ल के प्रथम शेर को 'मतला' कहते हैं और अंतिम शेर को 'मख़्ता' कहा जाता है। मख़्ता में प्रायः उस ग़ज़ल या शेर के रचनाकार का नाम अथवा उपनाम शामिल रहता है। मिर्ज़ा ग़ालिब, दाग़, जिगर मुरादाबादी, फैज़ अहमद फैज़, निदा फाज़ली जैसे शायरों का नाम ग़ज़लों के रचनाकार के रूप में विशेष प्रसिद्ध है।

प्रसिद्ध ग़ज़ल गायको में मेंहदी हसन, गुलाम अली, बेगम अख़्तर, जगजीत सिंह, अहमद हुसैन मोहम्मद हुसैन, तलत अज़ीज इत्यादि कलाकारों का नाम लिया जा सकता है। ग़ज़ल प्रायः दादरा कहरवा, रूपक, पश्तो, दीपचंदी इत्यादि तालों में गाई जाती हैं।

कव्वाली:—

कव्वाली गायन शैली को सूफ़ी संगीत परम्परा की विशेष देन कही जा सकती है। कव्वाली में अधिकतर उर्दू एवं फ़ारसी शब्दों का प्रयोग होता है। जहाँ ग़ज़लों का प्रमुख भाव श्रृंगार रस प्रधान होता है वहीं कव्वाली का प्रमुख भाव अल्लाह या ईश्वर के प्रति इबादत और प्रेम का होता है। जब कहीं श्रृंगार भाव की कव्वाली गाई जाती है तो उसे भी यही कहा जाता है कि यह नायक—नायिका के प्रति प्रेम का भाव नहीं है अपितु आत्मा रूपी नायिका और परमात्मा (नायक) के प्रति प्रेम व श्रृंगार का भाव है, जिसे प्रकट करने के लिये कव्वाली गाई जा रही है। कव्वाली ज्यादातर सामूहिक रूप में ही गाई जाती है। इसमें एक अथवा दो गायक मुख्य गायक के रूप में होते हैं तथा शेष सहयोगी होते हैं।

कव्वाली के साथ मुख्य रूप से ढोलक, हारमोनियम एवं बैंजो वाद्यों की संगत की जाती है तथा साथी गायक कलाकार हाथों से ताली देकर भी ताल से ताल मिलाकर इसका गायन करते हैं।

कव्वाली गायकों को 'कव्वाल' की संज्ञा दी जाती है। कव्वाली में मुक़ाबले की परम्परा भी प्रायः देखी जाती है जिसे कव्वालों का दंगल भी कहते हैं। यह मुक़ाबला कभी—कभी पूरी रात भी चलता है और अंत मे विजेता दल को पुरस्कृत भी किया जाता है। पश्तो, रूपक तथा कहरवा तालों का इस गायन शैली में प्रयोग होना भी इसकी एक विशेषता है। प्रमुख कव्वाल गायकों में साबरी ब्रदर्स, अजीज नाजां, नुसरत फतेह अली खाँ, वड़ाली बन्धु इत्यादि का नाम लिया जा सकता है।

2. प्रायोगिक पक्ष

राग—यमन

संक्षिप्त परिचयः—

यह राग कल्याण थाट से उत्पन्न माना जाता है। इस राग में मध्यम तीव्र तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग का वादी स्वर गांधार तथा संवादी स्वर निषाद है। इसके आरोह तथा अवरोह दोनों ही में सातों स्वर प्रयुक्त होने के कारण इसकी जाति सम्पूर्ण—सम्पूर्ण है। इस राग का गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर माना गया है।

आरोहः— सा, रे, ग, म्, प, ध, नि, सां।

अवरोहः— सां नि ध प, म् ग, रे सा ।

पकडः— नि़ रे ग, रे सा, प म् ग, रे सा।

सरगम—गीत (ताल—त्रिताल)

स्थायी

नि ध ऽ प	म॑ प ग म॑	प ऽ ऽ ऽ	प म॑ ग रे
0	3	X	2

सा रे ग रे	ग म॑ प ध	प म॑ ग रे	ग रे सा ऽ
0	3	X	2
नि़ रे ग म॑	प ध नि सां	रें सां नि ध	प म॑ ग म
0	3	X	2

अंतरा

ग ग म॑ ध	नि सां ऽ सां	नि रें गं रें	सां नि ध प
0	3	X	2
गं रें सां नि	ध प नि ध	प म॑ ग रे	ग रे सा ऽ
0	3	X	2
नि़ रे ग म॑	प ध नि सां	रें सां नि ध	प म॑ ग म
0	3	X	2

अलंकार अभ्यास

1. नि़ रे ग म॑ ध नि सां
   सां नि ध प म॑ ग रे सा ।
2. नि़रे रेग गम॑ म॑प पध धनि निसां
   सांनि निध धप पम॑ म॑ग गरे रेसा ।
3. नि़रेग रेगम॑ गम॑ध म॑धनि धनिसां
   सांनिध निधप धपम॑ पम॑ग म॑गरे गरेसा ।
4. नि़रेगम॑ रेगम॑ध गम॑धनि म॑धनिसां
   सांनिधप निधपम॑ धपम॑ग पम॑गरे म॑गरेसा ।
5. नि़रेसा
   नि़रेगरेसा
   नि़रेगम॑गरेसा
   नि़रेगम॑पम॑गरेसा
   नि़रेगम॑धपम॑गरेसा
   नि़रेगम॑धनिधपम॑गरेसा
   नि़रेगम॑धनिसांनिधपम॑गरेसा।

राग–भूपाली

संक्षिप्त परिचयः–

यह राग कल्याण थाट से उत्पन्न माना गया है। इस राग में मध्यम एवम निषाद वर्जित स्वर होने के कारण इसको जाति औड़व–औड़व है। इस राग में लगने वाले सभी स्वर शुद्ध हैं। वादी स्वर गांधार तथा

संवादी स्वर धैवत है। इस राग का गायन समय रात्रि का प्रहर माना गया है।

आरोहः–	सा रे ग, प ध सां।
अवरोहः–	सां, ध प ग, रे सा।
पकड़ः–	ग रे सा ध़ सा रे ग, प ग, ध प ग, रे सा ।

सरगम–गीत (ताल–त्रिताल)

स्थायी

सां सां ध प	ग रे सा रे	ग ऽ प ग	ध प ग ऽ
ग प ध सां	रें सां ध प	सां प ध प	ग रे सा ऽ
0	3	X	2

अंतरा

ग ग प ध	प सां ऽ सां	ध ध सां रे	गं रें सां ध
गं गं रें सां	रें रें सां ध	सां सां ध प	ग रे सा ऽ
0	3	X	2

अलंकार अभ्यास

1 सा रे ग प ध सां
सां ध प ग रे सा।

2 सासा रेरे गग पप धध सांसां
सांसां धध पप गग रेरे सासा।

3 सासासा रेरेरे गगग पपप धधध सांसांसां
सांसांसां धधध पपप गगग रेरेरे सासासा।

4 सारे रेग गप पध धसां
सांध धप पग गरे रेसा।

5 सारेग रेगप गपध पधसां
सांधप धपग पगरे गरेसा।

6 सारेगरे रेगपग गपधप पधसांध धसारेंसां
सारेंसांध धसाधप पधपग गपगरे रेगरेसा।

7 सागरेसा रेपगरे गधपग पसांधप धरेंसांध सांगंरेंसां
सांगंरेसा धरेंसाधं पसांधप गधपग रेपगरे सागरेसा।

8 सारेसा रेगरे गपग पधप धसांध सांरेसां
सारेसां धसांध पधप गपग रेगरे सारेसा।

9 सारेसारेग रेगरेगप गपगपध पधपधसां।
सांधसांधप धपगपग पगपगरे गरेसारेसा।

10 सारेसा
सारेगरेसा
सारेगपगरेसा
सारेगपधपगरेसा
सारेगपधसांधपगरेसा।

ताल कहरवा

कहरवा ताल में कुल आठ मात्रायें होती हैं। कुल दो विभाग होते हैं तथा प्रत्येक विभाग में चार–चार मात्राऐं होती हैं। ताल की प्रथम मात्रा में सम तथा पाँचवीं मात्रा में खाली होती है। इस ताल को हाथ से प्रदर्शित करने की प्रक्रिया में प्रथम मात्रा को ताली बजाकर दिखाते हैं तथा पाँचवीं मात्रा में हथेली को थोड़ा दूर ले जाकर खाली दर्शाते हैं। इस प्रक्रिया को प्रयोगात्मक रूप से कक्षा–कक्ष में अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

ताल कहरवा का ठेका

1 2 3 4	5 6 7 8
धा गे न ति	न क धि न
X	0

ताल दादरा

दादरा ताल में कुल छह मात्रायें होती हैं। कुल दो विभाग होते हैं तथा प्रत्येक विभाग में तीन–तीन मात्राऐं होती हैं। ताल की प्रथम मात्रा में सम तथा चौथी मात्रा में खाली होती है। हाथ से प्रदर्शन में पहली मात्रा में ताली तथा चौथी मात्रा में खाली की प्रक्रिया दर्शाई जाती है।

ताल दादरा का ठेका

1 2 3	4 5 6
धा धिं ना	धा तिं ना
X	0

ताल त्रितालः–

त्रिताल ताल में कुल सोलह मात्राऐं होती हैं। कुल विभाग चार होते हैं तथा प्रत्येक विभाग में चार–चार मात्राऐं होती हैं। पहली मात्रा में सम तथा नवीं मात्रा में खाली होती है। हाथ से प्रदर्शन करते समय पहली, पाँचवीं तथा तेरहवीं मात्रा में ताली तथा नवीं मात्रा में खाली प्रक्रिया दर्शाई जाती है–

ताल त्रिताल का ठेका

1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12	13 14 15 16
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
0	3	X	2

विशेषः— किसी भी ताल में सम को 'x' चिन्ह से तथा खाली को '0' चिन्ह से दर्शाया जाता है। अन्य अंकों से तात्पर्य ताली के क्रमांक से है। उदाहरणार्थ त्रिताल में '2' का मतलब दूसरी ताली (पहली ताली सम हुई) तथा '3' का मतलब तीसरी ताली से है।

सांगीतिक परिभाषाऐं

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. अलंकार का शाब्दिक अर्थ है आभूषण या गहना। श्रृंगारिक वस्तुओं के रूप में जिस प्रकार आभूषण शरीर का सौंदर्य बढाने में सहायक होते हैं, उसी प्रकार अलंकार सांगीतिक सौंदर्य को बढ़ाने में सक्षम होते हैं।
2. राग ध्वनि की वह विशिष्ट रचना है जिसमें स्वर एवं वर्ण के कारण सौंदर्य हो तथा जो मनुष्य के चित्त या मन को आनन्दित कर सकें।
3. थाट अथवा ठाठ स्वरों के उस समूह को कहते हैं जिसके आधार पर रागों की रचना की गई है। थाटों को अगर रागों का जन्मदाता कहें तो गलत नहीं होगा।
4. ताल शब्द की रचना 'तल्' धातु से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है प्रतिष्ठा अथवा स्थिरता। ताल वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा गायन, वादन अथवा नृत्य की क्रिया को नापा जाता है।
5. मुसलमानों के मध्य प्रचलित 'कव्वाली' गायन शैली तथा भारतीय संगीत के गीत प्रकारों के सम्मिश्रण से ख्याल गायन शैली का जन्म हुआ।
6. 'ख्याल' मूलत फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है विचार अथवा कल्पना।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्नः

1. अलंकारों की रचना निम्न में से किस क्रम में पाई जाती है–

   (अ) आरोही (ब) अवरोही

   (स) आरोही–अवरोही (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. राग में कम से कम कितने स्वर होने चाहिये–

   (अ) दो (ब) चार

   (स) सात (द) पाँच

3. राग की कितनी जातियाँ होती हैं–

   (अ) पाँच (ब) सात

   (स) नौ (द) दस

4. वर्तमान में संगीत में कितने ठाठ प्रचलित हैं–

   (अ) छत्तीस (ब) बहत्तर

   (स) सोलह (द) दस

5. सात मात्रा की ताल का क्या नाम है–

   (अ) दादरा (ब) रूपक

   (स) कहरवा (द) झप

6. पं. राजन साजन मिश्र किस शैली के लिए प्रसिद्ध है–

   (अ) ध्रुपद (ब) कव्वाली

   (स) ख्याल (द) भजन

7. भारतीय संगीत में कौनसी शैली सूफी परम्परा से संबधित है–

   (अ) ख्याल (ब) कव्वाली

   (स) ग़ज़ल (द) भजन

8. राग यमन किस थाट का राग है–

   (अ) कल्याण (ब) मारवा

   (स) भैरव (द) भैरवी

9. x चिन्ह किसके लिए प्रयुक्त होता है–

   (अ) सम (ब) खाली

   (स) ताली (द) कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अलंकार को देशी भाषा में क्या कहा जाता है?
2. वादी स्वर क्या होता है?
3. सम्पूर्ण–षाड़व जाति के राग में स्वरों की संख्या कितनी होती है?
4. 5 स्वर आरोह और 5 स्वर अवरोह में हो तो राग की जाति कौनसी होगी?
5. थाट में कितने स्वर होने आवश्यक है?
6. कहरवा ताल का ठेका लिखिये।
7. त्रिताल में कितने विभाग होते हैं?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अलंकार की परिभाषा दीजिये।
2. राग की परिभाषा दीजिये।
3. शुद्ध और विकृत स्वरों के नाम लिखिये।
4. लय को परिभाषित कीजिये।
5. ख्याल शैली के वर्तमान में दो प्रसिद्ध गायक–गायिकाओं के नाम लिखिये।
6. क्रमिक पुस्तक मालिका ग्रंथ की विषय वस्तु के बारे में बताइये।
7. वर्तमान समय के दो प्रसिद्ध ग़ज़ल गायकों के नाम लिखिये।
8. नुसरत फतेह अली संगीत की किस विधा के लिए प्रसिद्ध हैं?

निबंधात्मक प्रश्न

1. ख्याल शैली की उत्पत्ति को विस्तार से समझाइये।
2. राग यमन का परिचय दीजिये।
3. राग भूपाली के चार अलंकार लिखिये।
4. त्रिताल का ठेका लिखिये तथा उसका शास्त्रीय विवरण दीजिये।

बहुचयनात्मक प्रश्न – उत्तरमाला

1–स, 2–द, 3–स, 4–द, 5–ब, 6–स, 7–ब, 8–अ, 9–अ

भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों का परिचय

(कत्थक, भरतनाट्यम, कथकली मणिपुरी)

मानवीय अभिव्यक्तियों के रसमय प्रदर्शन की कला को 'नृत्य' कला कहते हैं। मानव जन्म से अपने भावों को अभिव्यक्त करने लगता है। बच्चा जन्म से हो आंगिक क्रियाओं, ध्वनि एवं बड़ा होने पर शब्दों के माध्यम से अपने भाव प्रदर्शित करने लगता है। नृत्य अभिनय कला का सांगीतिक रूप है जिसमें शब्द, संगीत, मुद्राओं का समन्वय है। नृत्य कला देवी देवताओं, दैत्य–दानवों, मनुष्यों एवं पशु पक्षियों को सदैव से ही अति प्रिय रही हैं।

भारतीय संस्कृति एवं धर्म आरम्भ से ही नृत्यकला से जुडे रहे हैं। वेदों एवं पुराणों में इसके अनेक उदाहरण मिलते है। आज भी नृत्य की विषय–वस्तु महाकाव्य एवं पौराणिक कथाओं से सम्बंधित है। समयानुसार नृत्य कला की विषय–वस्तु मे वातावरण एवं जनरूचि के अनुसार परिवर्तन होता आया है। पत्थर के समान कठोर व दृढ प्रतिज्ञ मानव हृदय को भी मोम सदृश पिघलाने की शक्ति इस कला में है।यही इसका मनोवैज्ञानिक पक्ष है। यह कला मनोरंजक तो है ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन भी है इसीलिए यह कला–प्रवाह पुराणों एवं श्रुतियों से होता हुआ आज तक अपने शास्त्रीय स्वरूप में धरोहर के रूप में हम तक प्रवाहित है। भारत मे

लोक एवं शास्त्रीय नृत्यों ने जन मानस को सदैव ही आकर्षित किया है। लोक नृत्यों का विकसित एवं परिष्कृत रूप ही शास्त्रीय नृत्य है। वर्तमान में लखनऊ घराने के पं. बिरजू महाराज, सितारा देवी शोभना देवी एव जयपुर घराने की मालविका मित्र कुमुदिनी लाखिया, मनिषा गुलियानी आदि प्रमुख है। जयपुर् के पं. गिरधारी महाराज पं. कन्हैया लाल जबड़ा, डॉ. शाशि सांखला कत्थक गुरू के रूप में विख्यात है। नृत्य के विषय में उपलब्ध ग्रंथो में सबसे प्राचीनतम भरत मुनि का नाट्यशास्त्र है। वेदों मे भी नृत्य संबंधी उल्लेख प्राप्त होते हैं। गुफाओं में प्राप्त आदि मानव के उकेरे चित्रों तथा हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त मूर्तियाँ नृत्य कला की अति प्राचीनता सिद्ध करती है।

भरत के नाट्यशास्त्र के समय तक भारतीय समाज में अनके प्रकार की कलाओं का पूर्ण रूपेण विकास हो चुका था। नाट्यशास्त्र में नृत्य कला के सिद्धान्तों का लिखित वर्णन प्राप्त होता है। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथो जैसे कालीदास के शाकुंतलम्, मेघदूत में, वात्स्यायन की कामसूत्र तथा मृच्छकटिकम आदि ग्रंथो में नृत्य का विवरण भारतीय संस्कृति की कला प्रियता को दर्शाता है। आज भी हमारे समाज में नृत्य–संगीत को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। भारत के विविध शास्त्रीय नृत्यों की अनवरत शिष्य परम्पराऐं इस सांस्कृतिक विरासत को पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहित करती रही हैं।

भारत के विभिन्न प्रदेशों में नृत्य की अनेक शैलियाँ पाई जाती है, इन नृत्य शैलियों में चार विशेष महत्वपूर्ण हैं, जिनकी गणना शास्त्रीय नृत्य शैलियों के अन्तर्गत की जाती है।

1. कत्थक
2. भरतनाट्यम
3. कथकली
4. मणिपुर

कत्थक

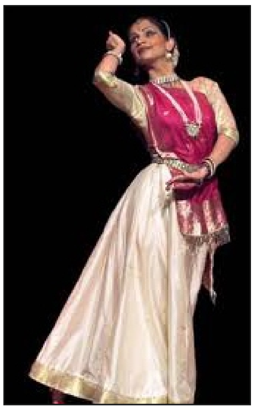

कत्थक शैली का जन्म ब्राहम्ण पुजारियो द्वारा हिन्दुओं की पारम्परिक पुनः गणना में निहित है जिन्हे 'कथिक' कहते थे। कथिक नाटकीय अन्दाज में हावभावों का उपयोग करते थे, कालान्तर में यह कथा कहने की शैली और अधिक विकसित होकर नृत्य रूप बन गया। कत्थक शब्द की उत्पत्ति कथा से हुई। 'कथनं करोति कथक' अर्थात जो कथन करता है वह कथक है।

कत्थक उत्तर भारत की नृत्य शैली है। यह बहुत ही प्राचीन है, क्यो कि महाभारत में भी इसका वर्णन है। मध्यकाल में कृष्ण कथा और नृत्य से इसका सम्बन्ध था।

प्राचीनकाल में कथाकास नृत्य के कुछ तत्वों के साथ महाकाव्य एवं पुराणों से कहानियाँ सुनाया करते थे। पीढी दर पीढी यह नृत्य प्रचलित होने लगा। इसे कथक नटवरी नृत्य भी कहते थे। तेरहवीं शताब्दी तक इस नृत्य ने शैली गत रूप ले लिया था। भक्ति आन्दोलन के समय रासलीला पर कथक का प्रभाव पडा। इस तरह का नृत्य प्रदर्शन कछावछकास मंदिरों में भी करने लगे।

पंद्रहवी शाताब्दी तक यह नृत्य आध्यात्मिकता से दूर हटकर लोक तत्वों से प्रभावित होने लगा।

मुगलों के युग में फारसी नर्तकियाँ 100 से 150 घुंघरू पहन कर कदमों से ताल (लयकारी) द्वारा विभिन्न भावों को प्रकट करने लगी।

उत्तर भारत में मुगलों के आने पर इस नृत्य को शाही दरबार ले जाया गया जहां इसका विकास परिष्कृत कला रूप में हुआ। इस नृत्य में अब धर्म की अपेक्षा सौंदर्य बोध पर अधिक बल दिया, परिणामस्वरूप इसमें अनेक बुराइयाँ आ जाने के कारण समाज से इसका बहिष्कार हो गया। कच्छवा के राजपूतों के राजसभा में जयपुर घराना और अवध के नवाब वाज़िद अली शाह के राजसभा में लखनउ घराने का विकास हुआ कालान्तर में वाराणसी की सभा में बनारस घराने तथा अपनी विशिष्ट रचनाओं के लिए प्रसिद्ध छत्तीसगढ़ का रायगढ़ घराने का भी विकास हुआ। रायगढ़ घराना ज्यादा प्रसिद्ध नहीं हो पाया। इस प्रकार इस नृत्य के तीन घराने लखनऊ, बनारस और जयपुर हैं, जिनकी अपनी शैलीगत विशेषताऐ हैं। कत्थक नृत्य की प्रस्तुति एक विशेष क्रम से की जाती है।

1. नृत्त अर्थात् वन्दना देवताओं का (मंगलाचरण)।
2. ठाठ अर्थात् चक्कर (तिहाईयों) के साथ सम पर आना।
3. आमद अर्थात् प्रवेश जो ताल बद्ध बोल का पहला परिचय होता है।
4. सलामी–मुस्लिम शैली में दर्शकों का अभिवादन।
5. कविता–कविता के अर्थ को नृत्य में प्रदर्शित करना।
6. पड़न–तबला और पख़ावज के बोलों पर नृत्य।
7. परमेलु–एक बोल या रचना जहाँ प्रकृति का प्रदर्शन होता है।
8. गत–यहां दैनिक जीवन के सुन्दर चाल–चलन को दिखाया जाता है।
9. लड़ी–तत्कार की रचना
10. तिहाई–एक रचना जहाँ तत्कार तीन बार दोहराया जाती है और सम पर नाटकीय रूप से समाप्त होता हैं।
11. नृत्य– भाव को मौखिक टुकड़े की एक विशेष प्रदर्शन शैली में दिखाया जाता है।

भरतनाट्यम्

भरतनाट्यम् दक्षिण भारत के तमिनलाडू राज्य से संबंधित है, अब यह नृत्य दक्षिण भारत के अलावा उत्तर भारत में भी प्रसिद्ध है। यह नाम 'भरत' शब्द से लिया गया तथा इसका सम्बन्ध नृत्य शास्त्र से हैं। भरत नाट्यम् में जीवन के तीन मूल तत्व दर्शन शास्त्र, धर्म व विज्ञान है। यह एक गतिशील व सांसारिक नृत्य शैली है। इसकी प्राचीनता स्वयं सिद्ध है। इसे सुरूचि व सौदंर्य सम्पन्नता का प्रतीक बताया जाना पूर्णतः संगत है। इस परम्परा में पूर्ण समर्पण, सांसारिक बंधनों से विरक्ति तथा निष्पादनकर्ता का चरमोत्कर्ष पर होना आवश्यक है। भरतनाट्यम तुलनात्मक रू से नया नाम है। पहले इसे सादिर, दासीअट्टम् और तन्जावुरनाट्यम के नाम से जाना जाता

था। भरतनाट्यम के कुछ प्रमुख कलाकार–लीला सैमसन, मृणालिनी साराभाई, वैजयंती माला, मालविका सरकार, यामिनी कृष्ण मूर्ति, सोनल मानसिंह, रूक्मिणी देवी, अरूणेय आदि हैं।

इसका सम्बन्ध मंदिरो एवं देवदासियों से रहा है और इसी कारण आज हमें यह नृत्य अपने मूल रूप में प्राप्त हो सका है। इस कला में देवदासियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इसके आचार्य नत्तुवनः कहलाते हैं, जो निशुल्क शिक्षा देते हैं।

उनकी शिष्याऐं जो धन अर्जित करती है तो उसका एक अंश अपने गुरू को आजीवन देती रहती हैं। देवदासियां तीन प्रकार की होती थी–राजदासी, देवदासी, और स्वदासी। दक्षिण भारत अन्य संस्कृतियों के आगमन से सुरक्षित रहा अतः वहाँ का द्रविण संगीत मूल रूप से प्राप्त होता है। इस नृत्य में मुद्राओं का बाहुल्य है। इसमें बिखरी हुई कथा वस्तु मिलती है। भरत नाट्यम् में नृत्य के तीन मूलभूत तत्वों को कुशलता पूर्वक शामिल किया गया है– ये हे भाव अथवा मनः स्थिति, राग अथवा संगीत (स्वर–माधूर्य) और ताल अथवा काल समंजन। भरतनाट्यम् की तकनीक में हाथ पैर मुख व शरीर संचालन समन्वयन के 64 सिद्धान्त हैं, जिसका निष्पादन नृत्य पाठ्यक्रम के साथ किया जाता है। इसमें नर्तक अकेले ही अथवा 3–4 के समूह में नृत्य करते हैं। भरतनाट्यम् में मृदंगम से संगति की जाती है और साथ में कर्नाटकी गीत और संगीत गाते हैं।

भरतनाट्यम् की प्रस्तुति को सात भागों मे बांटा जा सकता है, जिंन्हे 'चरण' कहते हैं। प्रथम चरण 'अल्लारिपु' जो प्रार्थना से सम्बंधित है। दूसरे चरण में गायन के साथ नृत्य किया जाता है जिसे 'जेथी स्वरम्' कहते है। तृतीय चरण 'शब्दम्' में साहित्यिक शब्दों से ईश्वर वन्दना और राज की स्तुति आदि की जाती है। 'वर्णम' भरतनाट्यम् का महत्वपूर्ण चौथा चरण है, जिसमें पद संचालन और आंगिक अभिनय का पूर्ण समन्वय देखने को मिलता हैं। पांचवे चरण 'पद्म' में श्रृंगारिक भावजन्य चेष्ठाओं की प्रधानता, छठे चरण 'तिल्लाना' में तीव्र गति का प्रदर्शन तथा सातवें एवं अन्तिम चरण में संस्कृत के श्लोकों द्वारा भगवान कृष्ण की आराधना की जाती है।

इस नृत्य में पांच आसन होते हैं–पदम्, सृष्टि, योग, वीर, और सिद्ध तथा चार तरह के घुटने के मोड–मण्डला, अर्धमण्डला, सममण्डला और नृत्त मण्डला होते हैं। इस नृत्य में तीन पाद विक्षेप होते हैं। अंचित, कुन्चित और उर्धान्चित तथा चार प्रकार की गति–करण, अंगहार, रेचक और पिंडीविध होती है।

वेशभूषा में लम्बी साड़ी दोनो पैरों से चिपकी रहती है। धोती के ऊपर वाले हिस्से को दुपट्टे की भांति कंधे पर रखते हुए कमर पर लपेटते हैं। कमर में करधनी तथा बाजू और गले में आभूषण पहनते हैं। पुरूष या स्त्री कोई भी इस नृत्य को प्रस्तुत कर सकता है। जब पुरूष इस नृत्य का प्रदर्शन करता है तो इसे कचपुरी नृत्य कहते है।

कथकलि

कथकलि दक्षिण भारत का एक प्राचीन शास्त्रीय नृत्य है। केरल के मालाबार, कोचीन और ट्रावनकोर के आसपास प्रचलित नृत्य शैली है। 17 वीं शाताब्दी में कोट्टारक्कारा तंपुरान (राजा) ने सियारामनाट्टय का आविष्कार किया था, उसी का विकसित और परिष्कृत रूप है कथकलि। कथकलि शब्द की व्युत्पत्ति 'कथा–केली' से है और इसका अर्थ नृत्य–नाट्य है। मालाबार क्षेत्र में यह परम्परा कृष्ण–नाट्य तथा राम–नाट्य के रूप में प्रचलित रही हैं। इसमें रामायण, महाभारत अथवा किसी पौराणिक कथा का चित्रण

किया जाता है। भारतीय अभिनय कला की नृत्य नामक रंगकला के अन्तर्गत कथकलि की गणना होती है।

कथकलि के साहित्यिक रूप को 'आट्टकथा' कहते है। गायक गण वाद्यो के वादन के साथ 'आट्टक्कथाऐं' गाते है। जिस पात्र का संवाद होता है वह रंगमंच पर आकर कथा के अनुसार अभिनय करता हैं। सर्वप्रथम परदे के पीछे ईश्वर–स्तुति की जाती है और कथानकों का परिचय दिया जाता है। संगीत के लिए 'मर्दल', रूद्रवीणा और बांसुरी का प्रयोग होता है। अभिनेता पैंरो में घुंघरू बांघता है। स्त्री का अभिनय भी अधिकतर पुरूष करते हैं। कथकलि में तैयम, तिरा, मुडियेटुट, पडयाणि इत्यादि केरलीय अनुष्ठान कलाओं तथा कूत्तु, कुडियाट्टम, कृष्णनाट्टय आदि शास्त्रीय कलाओं का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

साज–सज्जा एव वेशभूषा इस नृत्य की प्रमुख विशेषता है। मुख–सज्जा के अन्तर्गत विभिन्न रंगीन लेप निर्धारित है। मुख को प्रायः लाल या पीले रंग से रंगा जाता हैं, और आंखों एवं भौहों के चारों ओर सफेद रंग की रेखायें खीची जाती है। पात्र के अनुसार मस्तक पर तिलक ओर सिर पर गोल मुकुट लगाया जाता है। वेशभूषा के अन्तर्गत एक जैकेट और विचित्र प्रकार का घाघरा अथवा कभी कभी लम्बा चोगा जिसका घेरा चौड़ा और बाहें फैली हुई रहती है। कुण्डल, लकडी की चूड़ी, कवच, मुकुट, हार, फूलमाला आदि से श्रृंगार करते हैं।

कथकलि का मंच जमीन से ऊपर उठा हुआ एक चौकोर तख्त होता है, इसे 'रंगवेदी' या 'कलियरंगू' कहते हैं। कथकलि की प्रस्तुति रात में होने के कारण प्रकाश के लिए मंद्रदीप (आट्टविळक्कु) जलाया जाता है। प्रारम्भ में अनुष्ठान किये जाते हैं जो कि केलिकोटुट, अंगुरकेलि, तोडयम, वंदनश्लोक, पुरप्पाड़, मंजुतल आदि हैं। इसके पश्चात् नाट्य प्रस्तुति और पद्य पढ़कर कथा का अभिनय होता है। धनाशि नाम के अनुष्ठान के साथ कथकलि का समापन होता है।

मणिपुरी

मणिपुर क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचालित होने के कारण इसे मणिपुरी नृत्य कहते हैं। यह पूर्वी बंगाल और असम का शास्त्रीय ओर लोक–नृत्य दोनों है। इसकी उत्पत्ति कब ओर कैसे हुई इस सम्बन्ध में कोइ ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता है। इन नृत्य को अधिकतर बालिकाऐं ही करती हैं। पुरूष बहुत कम सख्या में नृत्य करते हैं। यह एक प्रकार की रास लीला है, इसमें नर्तक और नर्तकी कृष्ण, राधा और गोपियों का रूप बनाकर नृत्य करते हैं, तथा अंग संचालन द्वारा रस सृष्टि करते हैं।

माणिपुरी में रासलीला के मुख्य चार प्रकार हैं–

बसन्त रास, महारास, कुंजरास और नित्यरास।

किसी में राधा के आत्मसमर्पण का भाव है तो किसी में कृष्ण

राधा के श्रृंगार का और किसी में वियोग का। नृत्य में पद संचालन भौंहों का संचालन, हस्तमुद्रायें और अंगहार सभी कुछ लास्यमय रहता है। माणिपुर का सबसे प्रसिद्ध और प्राचीन नृत्य लाई हरोबा है, जिसमें सृष्टि के उद्‌भव की गाथा अभिनय के द्वारा प्रस्तुत की जाती है। यह एक परम्परागत नृत्य है, जिसे 'मैतेयी' नामक नर्तक करते है।

इस नृत्य की वेशभूषा बहुत आकर्षक होती है। नारी पात्रों के पहनावे में चमकीले अथवा रेशमी कपड़े का ढ़ीला लंहगा होता है जिसे 'कूमिन' कहते है। इस पर शीशे व जरी की बहुत सुन्दर कलाकारी रहती है। इसके उपर एक पारदर्शक सिल्क या पेशवान होता है। 'कूमिन' को घुट्नों के पास फुलाने के लिए अन्दर से उसमे बांस की खपच्चियों को गोल करके बांध दिया जाता है, इससे वह लंहगा फूला हुआ और गोल रहता है। गोपियाँ प्रायः लाल रंग और राधा हरे रंग के वस्त्र पहनती हैं। सिर के बालों को एक गांठ जैसा बाधा जाता है और सिर के पिछले भाग की और उंचा उठाकर कस दिया जाता है। इस गांठ के ऊपर बालों के उपर चांदी का एक आभूषण पहना जाता है। बालों के उपर एक पारदर्शक वस्त्र ओढ़नी की तरह डाला जाता है, जो मुख को भी ढ़ाँके रहता है। गोपियों की भाँति कृष्ण का भी उत्तम श्रृंगार किया जाता है। उन्हे प्रायः जोगिया रंग के वस्त्र पहनाते है। मुकुट मालाऐं तथा आभूषण धारण कराये जाते है।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियां

महत्वपूर्ण बिन्दुः—

1. मानवीय अभिव्यक्तियों के रसमय प्रदर्शन की कला को 'नृत्य कला' कहते हैं।
2. नृत्य के विषय में उपलब्ध ग्रंथो में सबसे प्राचीनतम् भरतमुनि का नाट्यशास्त्र हैं। नाट्य में नृत्य कला के सिद्धान्तों का वर्णन प्राप्त होता है।
3. लोक नृत्यों का विकसित एवं परिष्कृत रूप ही शास्त्रीय नृत्य है।
4. 'कथक' शब्द की उत्पत्ति कथा से हुई है। कथनं करोति कथकः अर्थात् जो कथन करता है वह कत्थक है।
5. कच्छवा के राजपूतों राजसभा में जयपुर और अवध के नवाब वाज़िद अलीशाह के राजसभा के लखनऊ घराने का विकास हुआ।
6. भरतनाट्‌यम् दक्षिण भारत के तमिनलाडू राज्य से संबंधित है।
7. भरतनाट्‌यम् में देवदासियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इसके आचार्य नत्तुवन कहलाते हैं।
8. 17 वीं शताब्दी में कोट्टारक्कारा तंपुरान (राजा) ने जिस रामनाट्टम् का आविष्कार किया, यह उसी का विकसित एवं परिष्कृत रूप कथकलि है।
9. मणिपुरी मे रासलीला के मुख्य चार प्रकार हैं—

   बसन्तरास, महारास, कुंजरास और नित्यरास
10. मणिपुर का सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध नृत्य 'लाईहरोबा' है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्नः–

1. नृत्य कला समन्वय है–

   (अ) शब्द (ब) संगीत

   (स) मुद्रा (द) उपर्युक्त सभी

2. नृत्य के विषय में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रंथ है–

   (अ) ऋग्वेद (ब) नाट्यशास्त्र

   (स) रामायण (द) महाभारत

3. नाटकीय अन्दाज में हाव–भाव द्वारा कथा कहने की शैली कहलाती है –

   (अ) भरतनाट्यम (ब) मणिपुरी

   (स) कत्थक (द) कथकली

4. कत्थक के लखनऊ घराने का विकास किसके शासन में हुआ –

   (अ) वाजिद अली शाह (ब) कच्छवा के राजपूत

   (स) मानसिंह तोमर(द) उपर्युक्त में कोई नहीं

5. भरतनाट्यम का संबंध किस राज्य से है –

   (अ) आसाम (ब) केरल

   (स) तमिलनाडू (द) कर्नाटक

6. सोनल मानसिंह नृत्य की किस कला से संबंधित है –

   (अ) कत्थक (ब) मणिपुरी

   (स) भरतनाट्यम (द) मणिपुरी

7. भरतनाट्यम की प्रस्तुति को मोटे तौर पर कितने भागों में बांटा गया है –

   (अ) पाँच (ब) तीन

   (स) चार (द) सात

8. कथकलि के साहित्यिक रूप को किस नाम से जाना जाता है –

   (अ) आट्टक्कथा (ब) रामनाट्टम्

   (स) कृष्णनाट्य (द) कुडियट्टम्

9. “आट्टविळक्कु” क्या है –

   (अ) रंग (ब) वस्त्र

   (स) प्रकाश (द) मंच

10. मणिपुरी नृत्य शैली भारत के किन क्षेत्रों में प्रचलित है –

(अ) बंगाल (ब) असम

(स) मणिपुर (द) उपर्युक्त सभी

अतिलघुततरात्मक प्रश्न

1. नृत्य कला की परिभाषा दीजिये।
2. कलाओं का उद्देश्य क्या है?
3. नृत्य कला के सिद्धान्तों का लिखित वर्णन सर्वप्रथम किस ग्रंथ में मिलता है?
4. कत्थक शैली का सम्बंध भारत के किस क्षेत्र से है?
5. कत्थक रायगढ़ घराना क्यों प्रसिद्ध है?
6. भरतनाट्यम् के कितने सिद्धान्त हैं?
7. "जेथीस्वरम्" क्या है?
8. रामनाट्टम् का आविष्कार किसने किया?
9. कथकली के मंच को क्या कहते हैं?
10. किस नृत्य शैली में प्रायः बालिकाऐं नृत्य करती हैं?
11. मणिपुरी के पारदर्शी वस्त्र का क्या नाम है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. "तिहाई" किसे कहते हैं?
2. कत्थक नृत्य के घरानों के नाम लिखिए।
3. भरतनाट्यम् के दो प्रसिद्ध कलाकारों के नाम लिखिये।
4. कत्थक के दो प्रसिद्ध कलाकारों के नाम लिखिये।
5. कत्थक नृत्य शैली राजस्थान से किस प्रकार संबंधित है?
6. कथकलि शब्द की व्युत्पत्ति को समझाइये।
7. कथकलि में किन–किन वाद्यों का प्रयोग किया जाता है?
8. मणिपुरी में रासलीला के प्रकारों को लिखिए।
9. "लाईहरोबा" की विषयवस्तु क्या होती है?
10. "कूमिन" क्या होता है?

अतिलघुत्तरात्मक उत्तरमाला

1. द 2. ब 3. स 4. अ 5. स 6 स

7. द 8. अ 9. स 10. द

रंगमंच एक परिचय–अभिव्यक्ति–संवाद–मनोरंजन

रंगमंच वह स्थान है जहॉ नृत्य, नाटक, खेल आदि का मंचन किया जाता है। रंगमंच 'रंग' और 'मंच' दो शब्दों से मिलकर बना है। दृश्य को आकर्षक बनाने के लिए दीवारों, छतो और पर्दों पर कथानक की विषय वस्तु से संबंधित विविध प्रकार के रंगो एवं चित्रो का प्रयोग किया जाता है। अभिनेताओं की वेशभूषा तथा सज्जा में भी विविध रंगो का प्रयोग होता है। 'मंच' वह स्थान होता हैं जहाँ पर अभिनय किया जाता है। दर्शकों की सुविधा के लिए यह फर्श से ऊँचा रहता है। दर्शकों के बैठने के स्थान को प्रेक्षागार तथा उस समूचे भवन को प्रेक्षागृह, रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं। पश्चिमी देशो में इसे थियेटर या ऑपेरा नाम दिया गया है। भारत में नाट्यकला का विकास ऋगवेद काल में हो गया था। ऋगवेद के कतिपय सूत्रो में यम और यमी, पुरूरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद है। इन संवादों मे ही विद्धान नाटक के विकास के चिन्ह पाते हैं। अनुमान किया जाता है कि इन्ही संवादो से प्रेरणा ग्रहण कर लोगों ने नाटक की रचना की तथा नाट्यकला का विकास हुआ। रंग–कर्म अथवा नाट्य–कला का स्वरूप आज जैसा भी हो लेकिन इसकी प्रेरणा प्रकृति ने ही दी है। हिलते हुये वृक्षों की गति का अनुकरण, वन्य पशुओं की ध्वनियों से स्वर प्रकृति जन्य है। अनुकरण कला तो सामान्य होती है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति नाट्य कला में पांरगत नही हो सकता । पात्र की सम्पूर्ण विशेषताओं को आत्मसात कर कुशलता पूर्वक उन्हे रंगमंच पर प्रस्तुत करना ही रंगकर्म की विशिष्टता और कुशलता है।

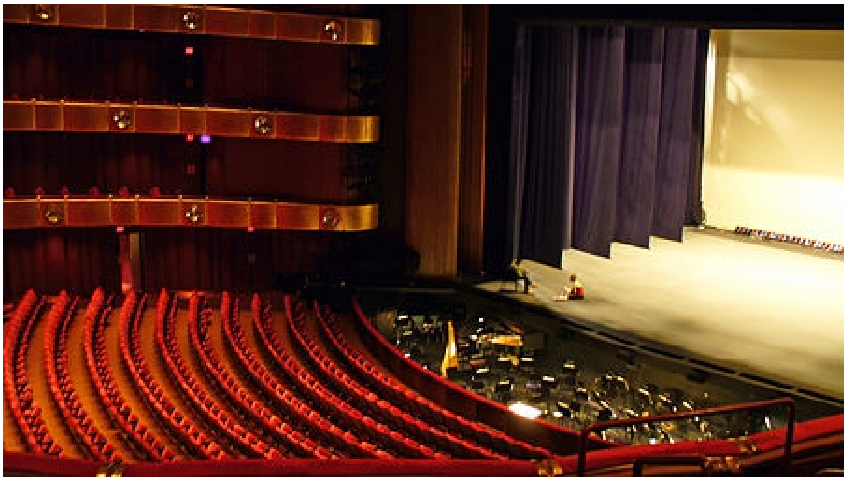

, जनमानस पर नाट्यकला का प्रभाव गहरा पडता है। विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान रंगकर्म के माध्यम से सहज ही हो जाते हैं। आदिम रंगकर्मी अपनी रूप सज्जा के लिए हिरमिच एवं अन्य प्राकृतिक रंगो, पुष्पमाला तथा वृक्षों के पत्तों एवं छाल आदि का प्रयोग करता था। जैसे–जैसे मानव सुसंस्कृत होता गया उसकी रंग कला और विकसित होती गई। आज विभिन्न संसाधनो

जैसे ध्वनि, प्रकाश एवं वेशभूषा आदि के प्रयोग से रंग कर्म को यथार्थ रूप देने की कोशिश की जाती है।

नाट्य के आचार्यों ने ''काव्येशु नाटक रम्य'' कहकर नाट के महत्व को स्पष्ट कर दिया है। संगीत और नाटक, मानव के उदात्तीकरण की अद्भुत क्षमता रखते हैं। मानवीय संवेगो को प्रबलता से अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम नाट्यकला है यह एक सर्वसम्मत मनोवैज्ञानिक तथ्य है। एक ओर काव्य, संगीत एवं कथ्य का मिश्रण है तो दूसरी ओर अभिनय, नृत्य एवं अनुकरण का युक्ति संगत संयोजन का नाम है, नाट्य कला। नाटक में सभी नौ रस श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, अद्भुत, शान्त एवं वात्सल्य की अभिव्यक्ति संभव है। सुप्रसिद्ध नाटककार कोस्तान्तोन स्तानिस्लावस्की के अनुसार किसी भी स्कूल की अपेक्षा रंगमंच (नाट्य–कला) मनुष्य के विकास में अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगी, क्यों कि नाट्यकला से मनुष्य का आन्तरिक सौंदर्य तो उजागर होता है साथ ही वह हमारे जीवन के सामाजिक, आर्थिक और बैाद्धिक विकास में उठने वाले उन सभी प्रश्नों का सटीक उत्तरों से समाधान करने की क्षमता रखती है, जिन्हें तर्क बुद्धि नहीं समझा सकती है। उन सभी का स्पष्टीकरण भावनाओ के माध्यम से हमें रंगमंच या नाट्य कला मे सीखने को मिलता है।

सुप्रसिद्ध कवि रविन्द्रनाथ टेगोर ने स्वंय अपनी जीवनी में लिखा है कि उनके परिवार में रंगमंचीय मनोरंजन को प्रमुख स्थान प्राप्त था, और यही कारण रहा कि कवीन्द्र रवीन्द्र एवं उनेक सभी भाई–बहिन अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि एव प्रतिभा के धनी निकले।

प्रमुख नाटकार और उनके नाटक

(क) संस्कृत नाटककार (आरंभिक युग)

1. कालीदास	–	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
2. भवभूति	–	उत्तर रामचरित
3. शूद्रक	–	मृच्छकटिकम
4. भास	–	स्वप्नवासवदत्तम्

(ख) हिन्दी (मध्य युग)

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	–	भारत दुर्दशा, सत्य हरिश्चन्द्र
2. जयशंकर प्रसाद	–	चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, राज्यश्री

(आधुनिक युग)

1. मोहन राकेश	–	आधे अधूरे, आषाढ़ का एक दिन
2. हरि कृष्ण प्रेमी	–	राखी की लाज
3. धर्मवीर भारती	–	अंधायुग
4. विष्णु प्रभाकर	–	होरी
5. डा. लक्ष्मीनारायण लाल	–	अंधा कुऑं, दर्पण, मादा कैक्टस
6. सहृदय नाट्याचार्य	–	कर्तव्य पथ

(ग) अन्य भाषाओं के प्रमुख नाटककार

1. शेक्सपियर – अंग्रेजी
2. बरतोल ब्रेख्त – जर्मनी
3. स्तनिस्लावस्की – रूसी
4. विजय तेन्दुलकर – मराठी
5. रवीन्द्रनाथ टेगोर – बंगला
6. बादल सरकार – पंजाबी

आधुनिक हिन्दी रंगमंच

बीसवीं शताब्दी के पाँचवे दशक में भारतीय रंगमंच में गतिशीलता आई। राज्यों और केन्द्र में संगीत नाटक अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा इसके अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों में नाट्य विभागों की स्थापना से इस क्षेत्र में स्वतंत्र नाटककारों निर्देशकों और अभिनेताओं का आगमन हुआ। सत्तर के दशक तक रंगमंच अत्यधिक प्रचलित हुआ लेकिन टेलीविजन के आने के बाद इसकी गति मन्द हो गई । प्रारम्भ में हिन्दी भारतीय रंगमंच की केन्द्रीय भाषा बनी। ये सभी नाटक पश्चिमी बोली मे लिखे गये। रंगमंच मे भारतीयता इसके पांरपरिक जड़ों में खोजी जाने लगी परिणाम स्वरूप नोटंकी (आला अफसर, बकरी, हरीशचन्द्र की लडाई) तमाशा (धासीराम कोतवाल) नाचा (हबीब तनवीर) बिंदेसिया (अमली, माटी गाड़ी, बिंदेसिया) इत्यादि लोक शैलियों का समावेश होने लगा।

नुक्कड़ नाटक

नब्वे के दशक में हिन्दी रंगमंच में महिला निर्देशकों, जिनमें अनुराधा कपूर, त्रिपुरारी शर्मा, माया राव, अनामिका हक्सर, अमाल अल्लाना, नीलम मान सिंह चौधरी, कीर्ति जैन इत्यादि प्रमुख है। महिला निर्देशकों ने जेंडर के प्रश्नों को अपने नाटकों का आधार बनाया।

अभिव्यक्ति

आचार्य भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में 'नाट्य' शब्द का जो प्रयोग हुआ वह केवल नाटक तक ही सीमित नही है, अपितु रंगमंच, अभिनय, नृत्य, संगीत, वेशभूषा, पात्र एवं दर्शक से भी सम्बद्ध है। उनका मत है कि कोई भी ऐसा ज्ञान नही है, शिल्प नही है, विद्या नही है, कला नही है, कर्म नही है, जो इस नाट्य से सम्बद्ध न हो। नाटक में चित्र संगीत और अनुकरण तीनों का समन्वय रहता है। इस दृष्टि से यह अपने आप में एक अपूर्व कला ही नही, अपितु कला–समुच्चय है। अनुकरण के भी दो प्रकार है– बाह्यानुकरण और आभ्यंतरिक या मनोवैज्ञानिक अनुकरण। बाह्यानुकरण में रूप–सज्जा भाव और भावानुकूल चेष्टाओं का मानसिक अनुकरण साम्मिलित है। इस अनुकरण अथवा अभिनय को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है:–

1. आहार्य्य अभिनय
2. सात्विक अभिनय

आहार्य्य अभिनय का अर्थ है – वाचिक ओर कायिक अभिनय। इसके अन्तर्गत भाषा, वेषभूशा, मुद्रा और भंगिमा

का अनुकरण सम्बन्धित पात्र के आचरण के समान ही अभिनेता को करने पड़ते हैं तभी उसका अभिनय प्रत्यक्ष

हो पाता है। शारीरिक चेष्टा, मुख की भाव–भंगिमा तथा गति की अनुक्रिया ही अभिनेता के अभिनय को जीवन्त बनाती है।

सात्विक अभिनय का अर्थ है– रसानुकूल, मनोवैज्ञानिक संवेगों, के अनुसार अभिनय का प्रस्तुतिकरण। क्रोध, श्रृंगार, करूण, वीभत्स, भय आदि मानसिक संवेगों के अभिनय के लिए अभिनेता को उसी के अनुरूप मानसिक रूप से तैयार रहना होता है। यह सात्विक अभिनय नाट्यकला की श्रेष्ठता और यर्थाथता के लिए अत्यावश्यक है।

कायिक अभिनय

पाश्चात्य अभिनय पद्धति के अन्तर्गत अभिनय के पाँच अंग माने गये हैं :–

1. मुख मुद्रा
2. शरीर मुद्रा
3. गति
4. वेग
5. वाणी

कायिक अभिनय की पूर्ण सफलता एवं सार्थकता के लिए कुछ विषेश बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक होता है

1. विभिन्न प्रकार के शारीरिक अभ्यास एवं योगासन
2. देश कालानुरूप सज्जा एवं वेशभूषा का ज्ञान

कायिक अभिनय की पूर्ण सफलता के लिए शरीर का सुगठित और आकर्षक होना अभिनेता के लिए अत्यावश्यक है। इसके लिए अभिनेता को तैरना, दौडना, प्राणायाम घुडसवारी, कुश्ती, जिमनाष्टिक एवं योगासनों का नियमित अभ्यास आवश्यक है। शरीर को गतिमान तथा मन को शान्त रखने के लिए एक कुशल अभिनेता को इन पर पूरा ध्यान देना आवश्यक होता है।

वाचिक अभिनय, उच्चारण और नाद अभ्यास अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए पात्र को स्वर के आरोह–अवरोह, उच्चारण की शुद्धता, पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग, ध्वनि और नाद का अत्यधिक ध्यान रखना आवश्यक है। यदि अभिनेता कायिक अभिनय में पूर्ण कुशल है परन्तु उसका उच्चारण सुस्पष्ट नही है तो दर्शकों में प्रभाव नही छोड़ पायेगा।

उच्चारण:–

अभिनेता बनने के इच्छुक व्यक्ति का उच्चारण पात्रानुकूल हो तथा नाद–विन्यास प्रभावी होना

चाहिये। इसका अभ्यास अनुकरण एवं वाचन द्वारा किया जा सकता हैं। रेडियो एव दूरदर्शन, नाटक, समाचार एवं अन्य कार्यक्रम सुनकर अपने उच्चारण को प्रभावी बनाने का अभ्यास किया जा सकता है। भाषा–संस्कार के लिए लिंगवाफोन का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। भाव के अनुकूल भाषा अथवा संवाद के प्रयोग हेतु गीत एवं कविता वाचन का अभ्यास उपयोगी होता है। अट्टहास करना, मंदहास्य करना, नाक से बोलना, हकलाकर बोलना, ग्रामीण लहजे में बोलना, स्थानीय भाषा में बोलना आदि अभिनय की दृष्टि से विभिन्न पात्रों को साकार करने में महत्वपूर्ण है।

नाद–अभ्यास

नाट्य कला में 'नाद' का विशेष महत्व है। नाद का अर्थ है स्वर। स्वरों के उतार चढ़ाव का अभ्यास भाव प्रदर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

अभिनय अथवा अभिव्यक्ति में आशु–अभ्यास

आशु अभ्यास का शाब्दिक अर्थ है– बिना संकेत अथवा पूर्व तैयारी के रचना करने अथवा प्रस्तुत करने का अभ्यास। आशु प्रस्तुति के लिए निम्नलिखित गुणों का अभ्यास करना होता है।

1. कल्पना (Imagination)
2. कथा की व्याख्या (Interpretation)
3. प्रेक्षण (Observation)
4. एकाग्रता (Concentration)
5. स्वांग या अनुकरण (Mime)
6. इच्छा–शक्ति (Will Power)

आशु अभ्यास अभिनय का प्राण तत्व है। कलाकार को अपनी कला में तभी पूर्णता प्राप्त होती है जब वह उपरोक्त सभी गुणों का विकास कर लेता है। सर्वप्रथम आभिनेता या निर्देशक नाटक के मूल भाव (Mood) को पकडता है। नाटक का उद्देश्य क्या है? कथानक किस काल का है? उसका राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक परिवेश क्या है? तथा प्रस्तुति के लिए मंच पर क्या क्या साधन सामग्री उपलब्ध है? अपनी कल्पना शक्ति से वह उस परिवेश और संस्कृति से जुडने, उस काल एवं कथानक के अनुरूप भाषा को हृदयंगम करता हुआ वाचिक अभ्यास करता है। अभिनय में एकाग्रता भी उतनी ही आवश्यक है जितनी की अभिनय के प्रति निष्ठा और तत्परता। एकाग्रता के अभ्यास से वह अपने आप को भूलकर उस पात्र को जीने लगता है। इन सभी गुणों का निर्वाह करने के लिए अभिनेता में इच्छा–शक्ति का होना आवश्यक है। जितनी तीव्र इच्छा–शक्ति होगी उसका आशु अभ्यास उतना ही सरल और शीघ्र होगा।

आशु अभ्यास के सभी तत्वों को हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। मान लिया कलाकार को अकबर के पात्र की अभिव्यक्ति करनी है। निर्देशक ने आवश्यक निर्देश दिये और शाही वेशभूषा कलाकार के लिए तैयार है किन्तु अभिनय से पहले अपने मन मस्तिष्क में उस ऐतिहासिक परिदृष्य की संयोजना करनी होगी। अकबर की महानता और शहंशाह के गौरव को आत्मसात करना होगा तभी उस कलाकार का आत्मविश्वास बढ़ पायेगा और अभिनय में निखार आयेगा। यद्यपि पटकथा नाटककार द्वारा उसी भाषा में लिखी होगी फिर भी उस भाषा शैली के अभ्यास के बिना प्रदर्शन प्रभावी नहीं हो पायेगा। अपने स्व को भूलकर

उसी प्रकार के हाव भाव तथा चाल ढाल का प्रदर्शन करना होगा। कलाकार को इच्छा शक्ति से अपने आपको शहंशाह अकबर जैसा चरित्र प्रस्तुत करना होगा।

अभिनय और रूपसज्जा

कायिक अभिनय में शरीर संचालन संवाद संप्रेषण के अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु है। यदि कथानक की विषय वस्तु, देश और काल के अनुरूप पात्र की रूप सज्जा और वेशभूषा नही है तो दर्शकों के मन पर छाप नही छोड़ पायेगा। उसका अभिनय हास्यप्रद होकर आलोचना का बिन्दु बन जायेगा।

रूप सज्जा एवं वेशभूषा के लिए कलाकार को पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं भौगोलिक वातावरण का सूक्ष्म ज्ञान होना आवश्यक है। नाटक के काल समय स्थान पात्रों की भाषा, व्यवहार, क्रिया, खान पान, रंगरूप आदि का ध्यान रखे बिना पात्र को पूर्णता देना संभव नही है। रूप सज्जा ही पात्र के चरित्र को स्पष्ट करके उसे जनता के मन मे बसाती है। प्राचीनकाल में अभिनेता के प्रसाधन हेतु विभिन्न अनुलेपनों, आभूषणों, केश विन्यासों उद्वर्तनो, अंगराजों, सुरभि साधनो आदि का प्रयोग किया जाता था। लोक नाटकों के लिये भी विभिन्न प्रकार के रंगो का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान युग में जबकि सिनेमा, दूरदर्शन व रंगमंच का पर्याप्त विकास हो रहा है, रूप सज्जा के लिए विभिन्न प्रसाधन सामग्री एवं सहायक उपकरणों का प्रयोग किया जाने लगा है। विभिन्न प्रकार की पोशाक,दाढ़ी मूंछ, विग आदि के अतिरिक्त हेयर–फिक्सर, टीथकलर, जिंक ऑक्साइड स्प्रिट गम, नोज पट्टी, मुर्दासींग, सफेदा व अन्य रंग आई–लाइनर आदि का प्रयोग पात्रों की रूप सज्जा में किया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त सज्जा कक्ष (ग्रीन रूम) में कंघा, शीशा, तेल, वेसलीन, ग्लेसरीन, लाली क्रीम–पाउडर, रूई, सुई धागा, प्लास्टर, सेफ्टी पिन, तौलिया, साबुन आदि वस्तुऐं भी हर समय उपलब्ध रहती हैं।

नाट्योपयोगी बाह्य वातावरण के अंग

नाटक की रचना रंगमंच प्रदर्शन के लिए होती है। नाटक की प्रस्तुति में दर्जनों व्यक्तियों वस्तुओं और साधनों की आवश्यकता होती है। नाटक के प्रस्तुतिकरण में दृश्य बंध (दृश्यों को बनाना) प्रकाश योजना, ध्वनि संगीत एवं वेशभूषा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नाटक के प्रस्तुतिकरण को सार्थक और प्रभावशाली बनाने के लिए मंच पर जिस सामग्री का प्रयोग होता है उसी सामग्री के संकलित रूप को मंच सज्जा कहते हैं मंच सज्जा के प्रमुख उपकरण इस प्रकार हैः–

प्रेक्षागृहः–

रंगमंच के बाह्य उपकरण के रूप में प्रेक्षागृह (प्रदर्शन स्थल) अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रेक्षागृह के अन्दर मंच एवं दर्शकों के बैठने की व्यवस्था होती है। इसको रंग भवन, रंगशाला, रंगमंच एवं थियेटर आदि नामों से भी जाना जाता है।

दृश्य बंधः–

प्रत्येक दृश्य में कथा की विषय वस्तु के अनुरूप दृश्यबंध (सेट) तैयार किये जाते हैं। प्रदर्शन को यथार्थ स्वरूप देने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के भौतिक उपकरणों, पर्दों आदि का प्रयोग किया जाता है। दृश्य बन्ध को प्रतीकों के माध्यम से भी मंच पर दर्शाया जाता है। यथार्थ उपकरणों के स्थान पर प्रतीक स्वरूप वस्तुऐं मंच पर सज्जित की जाती है।

प्रकाश योजनाः–

नाटक का रंगमंच एक बंद भवन होता है, जिसमें प्राकृतिक प्रकाश नही होता है। पात्रों की भाव भंगिमाओं को प्रभावी बनाने एवं विषय वस्तु से संबंधित सजीव वातावरण बनाने में प्रकाश योजना का अत्यधिक महत्व है। शोक दृश्य के मंचन में प्रकाश का धीमा होकर बुझ जाना, उन्मादक वातावरण के लिए लाल अथवा नीला प्रकाश नाटक को भाव तीव्रता प्रदान करता है। कुछ दृश्य जो प्रत्यक्ष नहीं दिखाये जाते उन्हे पर्दे पर छायाचित्रों में माध्यम से दिखाया जाता है।

ध्वनि और संगीत योजना

नाटकीय कथा की प्रस्तुति को रौचक और सरस बनाने तथा दृश्य में भावोत्पत्ति के लिए ध्वनि और संगीत का प्रयोग किया जाता है। गीत नृत्य एवं विभिन्न भाव दशाओं की प्रस्तुति में संगीत का प्रयोग प्रस्तुति में जान डाल देता है। कलाकार के मनोभावों तथा कथानक को सजीवता प्रदान करने में पार्श्व संगीत की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

वेशभूषा

कथानक के काल एवं परिवेश के अनुरूप पात्रों की वेशभूषा नाटक को जीवन्तता प्रदान करती है। वेशभूषा दर्शको को उस युग में पहुँचा देती है जिस युग की घटनाओं को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा रहा है। संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक नाटक का एक दृश्य–परिवेश होता है जिसमें नाटककार अपने पात्रों को जीते और कार्य करते हुए देखता और दिखाता है। नाटक के संतुलित और प्रभावोत्पादक वातावरण के रूप में दृश्य सज्जा आधुनिक नाटक का महत्वपूर्ण अंग है।

नाट्यकला के विविध रूप

वर्तमान समय में नाट्य कला के विभिन्न रूप हमारे देश में प्रचलित हैं, उनमें मुख्य है लोक नाट्य, कथकली, नृत्यनाट्यम अथवा बैले संगीत नाट्य या ऑपेरा, पुतली रंगमंच तथा बाल रंगमंच आदि। इन सबका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

लोक नाट्य

लोक नाट्य आदिम अनुकरण की प्राचीनतम अभिव्यंजना है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि यह आज भी नये निखार के साथ जीवित एवं लोकप्रिय है। प्रादेशिक लोक–नाट्यों की परम्परा को बचाये रखने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर अनेक प्रयास होने लगे हैं। लोक नाट्य आम जन जीवन के उस उन्मुक्त, रसपूर्ण कला वैभव को अभिव्यंजित करते हैं जिनकी नींव पर आज उनका वर्तमान स्वरूप खड़ा है।

लोक शैली में प्रचलित लोक–मन की अनगढ़ व्याख्या अपने आप में अनूठी है। लोक नाटक लोक के आदिम और तदनुकूल आचरणों और विचारों का मंचीय प्रदर्शन है। लोक नाट्य लोक संस्कृति का उद्घाटक है। नाट्य शास्त्र के अनुसार लोक वृत का अनुकरण ही लोक नाटक है। विभिन्न अवतारों, लोक मान्यताओं,

लोक–रीतियों का लोक नाट्यो में खुलकर प्रयोग हुआ है। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में–

रहता प्रपूर्ण है हमारा रंगमंच भी।
रूकता नही है कभी लोक नाट्य रंच भी।।

लोक नाटकों में नृत्य एंव गीत का बाहुल्य रहता है। गावों के बाहर ऊँचा मंच बनाकर प्रायः देर रात तक इनका मंचन किया जाता है। पांरपरिक रूप से भारत के प्रचलित प्रमुख लोक–नाटक इस प्रकार है–

प्रांत	**लोक नाटक**
राजस्थान	ख्याल
उत्तर प्रदेश	नौंटकी, स्वांग
गुजरात	भवाई
कश्मीर	जश्न
बंगाल	जात्रा
मध्यप्रदेश	माच
महाराष्ट्र	तमाशा
असम	अंकिया नाट
कर्नाटक	यक्ष–गान
बिहार	बिन्देसिया
केरल	कथकली

राजस्थान की लोक नाट्य परम्परा 'ख्याल' के नाम से जानी जाती है इसमें स्त्री पात्रों का अभिनय पुरूष ही करते है। करौली के तुर्रा–किलंगी, मारवाड़ी, शेखावटी के ख्याल प्रसिद्ध है। कुछ लोक नाट्य एवं ख्याल ऐसे भी होते हैं जिनमे संगीत और नृत्य का बाहुल्य होता है। जिनमे प्रमुख है बीछूड़ा, लोहड़ी–बड़ी, सूरदास, फूंदी नृत्य नाट्य, पणधट पतंग, मयूर, खंग, कच्छी घोडी, घूमर, पूंगी, संयोग–वियोग गींदड़, बोरा–बोरी, रासधारी न्हाण, भांकरिया, डोकरी, बाघाजी, ढ़ोला–मरवण, गौरी इत्यादि।

राजस्थान के ख़्यालो में संवाद भी अधिकतम गेय ही होते हैं, जिनमें लावनी, सोरठ, दोहा, चौपाई साखियाँ शेर और चौबालों का प्रयोग किया जाता है। वाद्य यंत्रो में नगाड़ा नगाड़ी सांरगी, मंजीरा, ढफ, आदि लोक वाद्यों का प्रयोग होता है। कथकली केरल का एक क्षेत्रीय लोकनाट्य रूप है, जिसे नृत्य नाटक कहना अधिक समीचीन होगा। कथकली भाव भंगिमाओ (मुद्राओं) और संकेतो के आधार पर चलने वाला नृत्य नाट्य है। इसमें विभिन्न प्रकार के मुखौटों का प्रयोग होता है। आजकल यह शास्त्रीय नृत्यों की श्रेणी में माना जाने लगा है।

कठपुतली–

विश्व के सबसे प्राचीनतम् नाट्य का सर्वप्रिय और अनोखा रूप है– पुतलियों का तमाशा। यदि एक जीवित अभिनेता मंच पर आकर अभिनय करता है, सवांद प्रेषण करता है तो कोई अद्भुत बात नही लेकिन जब यही

कार्य सूत्रधार के सूत्र पर आधारित काष्ठ–पुतली करे तो अवश्य ही आश्चर्य की बात है। कठपुतली अभिनय कला के सरंक्षण एवं संवर्धन का कार्य भारतीय लोक कला मण्डल उदयपुर मे हो रहा है।

नृत्य नाट्य अथवा बेले– नृत्य नाट्य भावों का अविभाज्य अंग है। लास्य अर्थात श्रृंगार युक्त भावों की प्रणेता पार्वती और पुरूष–भाव युक्त नृत्य ताण्डव के प्रणेता शंकर को माना गया है। नृत्य नाट्य में सम्पूर्ण कथा का अभिमंचन केवल नृत्य बोली के माध्यम से किया जाता है। पार्श्व–गीत और संगीत के आधार पर नर्तक अपनी अभिव्यक्ति विभिन्न नृत्य मुद्राओं, मूक भावों और पाद संचलन द्वारा करता है। प्रसिद्ध नर्तक उदय शंकर और उनकी पत्नी अमला शंकर आधुनिक नृत्य नाट्य के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। भारतीय कला मण्डल दिल्ली इसके संरक्षण और संवर्धन का कार्य कर रहे हैं।

संगीत–नाट्य या ऑपेरा

नाट्य रूपों का यह प्रकार यद्यपि हमारे प्राचीन नाटकों में भी देखने को मिलता है किन्तु तब अभिनय, संगीत और नृत्य एक साथ ही संयोजित रहते थे। कुछ वर्षों में संगीत नाट्य या ऑपेरा पश्चिम के प्रभाव वश एक अलग रंगमंच के रूप मे अवतीर्ण हुआ है। इस कला में भावों की अभिव्यक्ति केवल संगीत के आरोह–अवरोह के माध्यम से ही होती है। स्वर–ध्वनियां ही उभर–उभर कर पात्रों का भावाभिव्यंजन करती है। बालं रंगमंच– जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है कि यह बच्चों के लिए होता है। प्रारम्भ में एक बाल रंगमंच चिल्ड्रन लिटिल थियेटर के नाम से कलकत्ता में बना। अब दिल्ली व कुछ अन्य स्थानों पर इसकी शाखायें हैं। इसका उद्देश्य छोटे बच्चों को स्वर लय, गति, रंग और संवाद के माध्यम से उनमें कलात्मक अभिरूचि विकसित करना है।

रंगमंच एक परिचय

महत्वपूर्ण बिन्दुः–

1. दर्शकों के बैठने के स्थान को प्रेक्षागार तथा उस समूचे भवन को प्रेक्षागृह, रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं। पश्चिमी देशों में इसे थियेटर या ऑपेरा नाम दिया गया है।
2. एक ओर काव्य संगीत एवं कथ्य का मिश्रण हैं तो दूसरी और नृत्य एवं अनुकरण का युक्ति संगत संयोजन का नाम है, नाट्य कला।
3. नाटक मे सभी नौ रस–श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, अद्भुत, शान्त एवं वात्सल्य की अभिव्यक्ति सभंव है।
4. अनुकरण अथवा अभिनय को दो रूपों मे विभाजित किया जा सकता हैः–

   (1) आहार्य्य अभिनय (2) सात्विक अभिनय
5. सशक्त अभिनय हेतु कल्पना, कथा की व्याख्या, प्रेक्षण, एकाग्रता, अनुकरण तथा इच्छा भक्ति के गुणों का विकास करना होता है।
6. नाट्य कला के विभिन्न रूप हमारे देश में प्रचलित हैं, उनमें मुख्य हैः–

   लोकनाट्य, कथकलि, नृत्यनाट्यम् अथवा बेले संगीत नाट्य या ऑपेरा, पुतली रंगमंच तथा बाल रंगमच आदि ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्नः—

1. रंगमंच को निम्न में से किस नाम से भी जाना जाता है—

(अ) प्रेक्षागृह (ब) रंगशाला (स) नाट्यशाला (द) उपर्युक्त सभी

2. नाट्यकला में कितने रसों की अभिव्यक्ति संभव हैः—

(अ) आठ (ब) सात (स) नौ (द) चार

3. 'मृच्छकटिकम्' नाटक के लेखक हैंः—

(अ) कालीदास (ब) जयशंकर प्रसाद (स) शूद्रक (द) भवभूति

4. बंगला भाषा के नाटककार निम्न में से कौन हैः—

(अ) बादल सरकार (ब) रविन्द्र नाथ टैगोर (स) विजय तेन्दुलकर (द) उपर्युक्त सभी

5. पाश्चात्य अभिनय पद्धति के अन्तर्गत अभिनय के कितने अंग माने गये हैंः—

(अ) चार (ब) पांच (स) छः (द) सात

6. निम्नलिखित को सुमेलित करिये :—

(अ) राजस्थान — जश्न

(ब) कश्मीर — ख्याल

(स) मध्यप्रदेश — अंकिया नाट

(द) असम — माच

7. निम्नलिखित को सुमेलित करिये :—

(अ) कथकली — गुजरात

(ब) बिन्देसिया — बंगाल

(स) जात्रा — केरल

(द) भवाई — बिहार

8. भारतीय लोक कला मण्डल राजस्थान में कहाँ स्थित हैः—

(अ) जयपुर (ब) उदयपुर (स) बीकानेर (द) अजमेर

9. तुर्रा—किलंगी लोक नाट्य राजस्थान के किस जिले से संबधित हैः—

(अ) करौली (ब) सवाई माधोपुर (स) ब्यावर (द) चित्तौडगढ़

10.भारतीय लोक कला मण्डल कहाँ स्थित हैः—

(अ) पुणे (ब) जयपुर (स) दिल्ली (द) चंडीगढ़

अतिलधुरात्मक प्रश्नः–

1. दर्शकों के बैठने के स्थान को क्या कहते है?
2. 'उत्तर रामचरित' नामक संस्कृत नाटक के लेखक का नाम लिखिये।
3. राजस्थान संगीत नाटक अकादमी कहाँ स्थित है।
4. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय कहाँ स्थित है।
5. नाटक में अनुकरण के रूप बताइये।
6. नाटक में संवाद को प्रभावशाली बनाने के लिए कौनसा गुण आवश्यक है?
7. रूप सज्जा में किस सामग्री का प्रयोग किया जाता है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. रंगमंच को परिभाषित कीजिये।
2. नौ रसों के नाम लिखिये।
3. पाश्चात्य अभिनय पद्धति के पाँच अंग बताइये।
4. भाषा संस्कार के लिए किस उपकरण का प्रयोग किया जाता है।
5. आशु–प्रस्तुति के लिए किन गुणों का अभ्यास करना होता है।
6. लोक नाट्यो की विशेषता बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी रंगमंच को विस्तार से समझाइये।
2. अभिनय के दो रूपों को विस्तार से समझाइये।
3. नाट्योपयोगी बाहय वातावरण के अंगो को विस्तार से लिखिये।

उत्तरमाला (बहुचयनात्मक प्रश्न)

1. द 2. स 3. स 4. ब 5. ब

6. अ–2, ब–1, स–4, द–3

7. अ–3, ब–4, स–2, द–1

8. ब 9. अ